।। परमात्मने नमः।।

सतसंग

नित्य-सुलभ

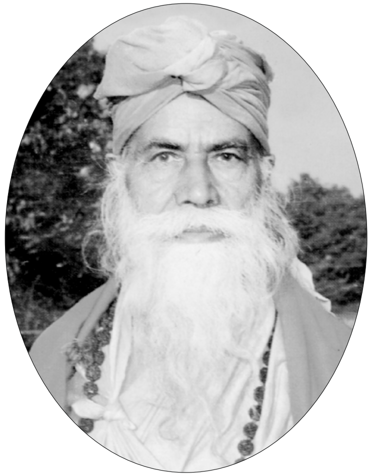

लेखक

साधु वेश में पथिक

प्रकाशक

श्री स्वामी पथिक अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति

28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ -226 001

विषय-क्रम

क्र.सं.	विषय	क्रम
1.	ध्यान	1
2.	स्तुति	2
3.	सत्य को जानो	3
4.	ज्ञान में मिथ्या आकार	22
5.	अहंकार विमूढ़ात्मा	35
6.	श्रद्धा को अश्रद्धा से बचाओ	52

संशोधित संस्करण : 2012

लागत मूल्य रु. 20.00

मुद्रक :

क्रियेटिव प्वाइंट एफ-25, जयहिन्द काम्प्लेक्स,

बी. एन. रोड, कैसरबाग, लखनऊ फोन : 0522-3012827

ध्यान

आनन्द मयं आनन्द मयं परमात्मा परमानन्द स्वयं
सदज्ञान मयं सद प्रेम मयं परमात्मा परमानन्द स्वयं
कुछ भी दुनियां के रूं काम यही कहते हुए
मिटे दुर्वासना तमाम यही कहते हुए
बीते दिन रात सुबह शाम यही कहते हुए
आनन्द मयं आनन्द मयं परमात्मा परमानन्द स्वयं
हर एक नाम में हर रूप में हो ध्यान यही
मिटा देता है जो अज्ञान है वो ज्ञान यही
यही पूजा स्वधर्म और व्रत विधान यही
मन से वाणी से सदा होता रहे गान यही
आनन्द मयं आनन्द मयं परमात्मा परमानन्द स्वयं
नित्य अविनाशी सत्य के ही अब भक्त रहो
विनाषी नामों से आकारों से विरक्त रहो
स्वयं में सत्य को पहचान लो अनुरक्त रहो
बहुत दुःख भोग लिये अज ने सुखासक्त रहो
आनन्द मयं आनन्द मयं परमात्मा परमानन्द स्वयं
प्रभु का उत्सव है सगत सत्य नहीं मानना है
मिलता कुछ भी नहीं, व्यर्थ खाक छानना है
खोजना कुछ नहीं, सतरूप को पहचानना है
'पथिक' पाना नहीं है नित्य प्राप्त जानना है

आनन्द मयं आनन्द मयं परमात्मा परमानन्द स्वयं

स्तुति

हे प्रभे सर्व हितकारी।
सुधि लेते रहो हमारी।।
हम क्षुद्र पतित हैं जितने
पर तुम महान हो उतने।
हम अपराधी हैं जितने,
तब तुम दयालु हो उतने।
हम आरत तुम दुःखहारी।
सुधि लेते तुम्हीं हमारी।।
तुम पूरण हम परिमित हैं,
तुम पवन हम कलुषित हैं।
तुम निश्चल हम चलचित हैं,
सब विधि प्रति दीन दलित हैं।
तुम अमृत हम विषधारी।
सुधि लेते तुम्हीं हमारी।।
निज कर्मो के प्रतिफलमें,
फंसते नित दुःख दलदल में।
हम 'पथिक' तुम्हारे बल में
विश्वास यही पल में।
तुम हरते विपदा सारी।
सुधि लेते तुम्हीं हमारी।।

सत्य को जानो

यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भाति तत्।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।

जिनके अस्तित्व से जगत का अस्तित्व हैं जिनके आनन्द से सब आनन्दित होते हैं उन (सच्चिदानन्द स्वरूप) गुरू को नमस्कार है।

अविच्छित्र चिदात्मैकः पुमानस्तीह नेतरत।
स्वसंकल्पवशाद् बद्धो निः संकल्पश्च मुच्यते।।

सर्वत्र एक अखण्ड चैतन्य रूप आत्मा की ही सत्ता है। आत्मा के बिना अन्य कुछ है ही नहीं। मनोमय अहंकार स्वयं के संकल्प को लेकर ही बंधा हुआ है। संकल्प रहित होने पर मुक्त ही है।

यह गुरु निर्णय हमारे लिये स्मरणीय है। चेतना जितनी शुद्ध होती जाती है उतनी ज्ञान की स्फूर्ति अधिक पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति होती है। चेतना से अहीनुभव और ज्ञान, बुद्धि द्वारा प्रकाशित होता है।

ज्ञान को अपनी आत्मा से भिन्न खोजना मूढ़ता है, मूर्खता है।

ब्रह्म ही सत्य है, यह जगत उसी की मिथ्या माया है, इसे यदि तुम भूलते रहोगे तब कितने ही ज्ञानी, ध्यानी बन जाओ, मिथ्या माया का मोह सुख के साथ दुख देता ही रहेगा।

परमात्मा के होकर परमात्मा में ही रहकर परमात्मा से विमुख बने रहना अहंकार का प्रथम पाप है, इस पाप से बन चकर आस्तिक हो जाओ। बार-बार परमात्मा का स्मरण आता रहे तभी यह पाप छटेगा।

अनेक नाम रूपों में एक चेतन तत्व को देखो। इस सत्य का अनादर न करो।

बुद्धि युक्त होकर देखो, एक बीज वृक्षाकार बन रहा है, तथा जो प्रगट हो रहा है, वही मिट रहा है, कोई भी शरीर जन्मता है, बढ़ता है,

बुद्ध होकर मृत्यु को भोगता है यह जितना भी परिवर्तन है, एवं संयोग वियोग है यह सब प्राकृतिक विधान है? यह विधान ही अन्तरस्थ सत्ता को सर्वाश्रय परमात्मा को और दिव्य गुणों को व्यक्त कर रहा है। ज्ञान में देखते हुये सुख-दुख के भोगी न बने रह कर सत्य के योगी होकर आनन्दित रहो।

सत उसे ही कहते हैं जो निरन्तर है, सर्वत्र है, सभी में है, सदा से हे सदा रहेगा।

सत का कभी त्याग नहीं हो सकता। सत से कभी भिन्नता तथा दूरी नहीं हो सकती। सत से कोई अलग नहीं हो सकता।

जो सत है अभी है, यही है, उसी में हम सब हैं, उसी के हैं।

अहं का स्फुरण इसी अनन्त अखण्ड सत परमात्मा में हो रहा है।

इस सत परमात्मा परम ब्रह्म की त्रिस्मृ होती रहती है, कब तक ?जब तक असत अनित्य की स्मृति चलती रहती है।

असत् अनित्य की विस्मृति होते ही नित्य सत्संग सुलभ है। चेतन, सत आत्मा के निरन्तर स्मरण से अरात की विस्मृति सम्भव है।

सत्चर्चा करना या सुनना अथवा चिन्तन करना, सत्कार्य करना सतसंग नहीं है। यह सब सतसंग के लिये सहयोगी अवश्य होते है।

सतसंग ही तो मानव का स्वधर्म है।

सत्संगी वही है जो निर्भय हो, निष्काम हो, निश्चित हो शान्त हो।

कहीं भागने से, वाह्य त्याग से अशान्ति नहीं मिटेगी। स्मरण रहे कि जगत में अपना कुछ नहीं है। फिर भी जो सम्बन्धित जन हैं उन्हें सुख बांटो, उसके बदले में सुख सन्मान या नाम प्रतिष्ठा कुछ न चाहो। क्योंकि तुम्हें अपने लिये परमात्मा ही परिपूर्ण है।

अपने अनुकूल होने का या प्रतिकूल के न रहने का संकल्प न करो, क्योंकि संकल्प की पूर्ति के भोग से संग दोष बढ़ता है। बहुत सावधान रहोगे और बुद्धि शुद्धि होगी तभी बच सकोगे।

बुद्धि शुद्ध तभी होगी जब ज्ञान में जगत से कुछ पाने का और कुछ बचाने का लोभ, मोह नहीं रहेगा। आत्मा परमात्मा निरन्तर है इस सत्य को भूल कर, जो नहीं मिला है वह केसे मिल जाये और जो मिला है, यह कैसे सुरक्षित रहे इस विचार से बुद्धि अशुद्ध रहती है।

अनासक्त भाव से प्राप्त की यथाशक्ति रक्षा करना और जो कुछ प्रारब्ध से मिलने को है उसे प्राप्त करते हुए सेवा में उपयोग करना यह तो शरीर के लिए कर्त्तव्य है।

सन्त सावधान करते हैं कि सत चेतन आत्मा एवं आनन्द स्वरूप परमात्मा बिना कुछ किये ही निरन्तर सुलभ है प्राप्त ही है, इस परम सत्य की विस्मृति होने से तुम परमात्मा को खोजते हो-इस भ्रम के निवारण के लिए गुरु उपासना की आवश्यकता रहती है।

इस चेतन आत्मा को सत्ता में असंख्य मन, बुद्धि, चित्त अहंकार निरन्तर गतिमय है, क्रिया-कर्मरत हैं लेकिन हमारे सत्‌चिदानन्द स्वरूप की अखण्ड शान्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती।

अज्ञानी, मोही, लोभी, अभिमानी, अहंकार, जिस सत्ता, शक्ति, चेतना द्वारा कर्ता भोक्ता बनता है उसी सत्ता शक्ति चेतना को ध्यान से नहीं देखता इसी कारण से अहंकार को अपने मन की मूढ़ता का तथा बुद्धि की मूर्खता का एवं बन्धन का ज्ञान नहीं होता फिर भी बन्धन से छटने के प्रयत्न करता रहता है।

तुम निरन्तर चेतना में हो जीते रहने का चिन्तन दृढ़ कर लो। देहादि तद्रुपता तोड़ दो।

चेतना में ही जीवन प्रभावित हो रहा है परन्तु चेतना को हम प्रायः भूले रहते हैं जड़ देह का स्मरण सदा बना रहता है। गुरोपदेस है जब तुम ज्ञान में यह देखने लगोगे कि यह देह मैं यहीं हूँ तब तुम्हें देह का ही जन्म और देह की मृत्यु दीखेगी अपनी नहीं। जब तुम जान लोगे कि यह प्राण मैं नहीं हूँ तब भूख प्यास प्राणों के धर्म दिखाई देगा अपना नहीं।

जब तुम जान लोगे कि यह चित्त मैं नहीं हूँ तब शोक मोह से तुम अपने को मुक्त ही पाओगे।

जब तुम समझ लोगे की यह बुद्धि भी मैं नहीं हूँ तब बन्धन और मोक्ष की समस्या समाप्त हो जायेगी।

जगतगुरु शंकराचार्य के दर्शनार्थ एक रोग ग्रस्त श्रद्धालु गया था उसे यही मनन करने को मंत्र बताया :-

नाहं देहो जन्म मृत्यु कुतो में।
नाहं प्राणः क्षुत्पिपासा कुतो में।
नाहं चेता शोक मोहो कुतो में।
नाहं बुद्धि बन्ध मोक्षो कुतो में।
ब्रह्मं वाह न संसारी नित्य मुक्तो न शोक भाक्।
सच्चिदानन्द रूपोऽमात्मान मिति भावदेय।।

मनुष्य जैसा चिन्तन करता है चेतना उसी मय हो जाती है। सन्त समझाते हैं-

स्वयं में बुद्धि को स्थिर करो तभी तुम देहवान न रह कर आत्मवान हो सकोगे।

तुम खड़े हो, चेतना में डूबो, इस ध्यान को साध लो तभी परम ज्ञान होगा।

बार-बार स्मरण करते रहो कि जहाँ हम हैं वहीं परमात्मा है।

अपने को देह के भीतर चिदाकाश स्वरूप अनुभव करो।

जिस ज्ञान में तुम सब कुछ समझते जानते हो तथा जिस शक्ति से तुम सब कुछ करते हो, एवं जिस प्रेम के सुखास्वाद लेते हो वह तुम्हारा बनाया हुआ कुछ भी नहीं है। सब कुछ परमात्मा में ही हो।

तुम निन्दा स्तुति को स्वीकार ही न करो और किसी की निन्दा स्तुति

भी न करो क्योंकि सभी परमात्मा के हैं, परमात्मा में ही हैं।

सभी में आत्मा को नमस्कार करो और आत्मा को परमात्मा से भिन्न न मानो।

तुम्हारे कुछ करने से वही मिलेगा जो तुम्हारी सीमित समझ के भीतर है लेकिन अकर्म से, अक्रिया से तुम्हारे किये बिना हो वह मिलेगा जो तुम्हारी सीमित समझ के बाहर सर्वत्र विद्यमान है।

एक महात्मा ने बताया कि यदि तुम छे घण्टे आँख बन्द करके मौन रह कर बैठे रहो तो शक्ति प्रवाह के कई छिद्र बन्द हों जायेंगे। वही शक्ति अन्तर यात्रा में सहायक होगी।

परमात्मा निरन्तर सर्वत्र मौजूद है, उसके अतिरिक्त कुछ भी मौजूद नहीं है।

निरन्तर विद्यमान सच्चिदानन्द परमात्मा को प्रतिफल स्मरण रखना ही सत्योंपासना है।

ध्यान से देखो जब दुःखी होते हो तब कौन सा दोष प्रबल हो रहा है, क्योंकि दुःख अपने ही दोष से होता है।

अपने को इतना स्निग्ध चिकना बनालों कि जो ऊपर गिरे वह फिसल जाये। आधात का प्रभाव ही नहीं हो।

ध्यान से देखों, कहाँ यह शुद्ध निर्विकार चेतन, कहां अशुद्ध विनाशी तन।

जो इस जड़ तन को अपना रूप मानते है और इस तन से सम्बन्धित दूसरी देहों को अपने प्रिय सम्बन्धी मानते हैं वह परम चेतन शिव से विमुख रह कर शव के उपाशक हैं।

शव के उपासक प्रेमी कितने ही मन्दिरों में नमः शिवाय कहकर प्रणाम करें परन्तु देह के प्रति आसक्ति ममता ही परम चेतन शिव की उपासना में बाधक बनती रहेगी।

परम चेतन तत्व ही परमात्मा का निराकार स्वरूप है। यह सभी आकारों को प्रकाशित कर रहा है।

सभी आकारों में निराकर चेतन स्वरूप को स्मरण रखना ही शिव शंकर का भजन है।

कुछ किये बिना ही परम चेतन स्वरूप निरन्तर स्मरण से ही सुलभ है। कहीं जाने की खोजने की आवश्यकता ही नहीं है।

यदि तुम इस निराकार शिवशंकर को आँखों से देखना चाहते हो तो प्रेम में मानसिक मूर्ति बनानी होगी।

हमें सन्त ने समझाया है, तुम भी समझ लो-तुम्हारे भाव ही मूर्तिमान हो जाते हैं। मन में भरी हुई मूर्ति जब प्रेम में ठहर जाती है तब प्रेम, उसी मूर्तिमय हो जाता है-यही दर्शन है।

जो बार-बार दुहराया जाता है वही अभ्यास इतना सहज हो जाता है कि उसीमय मन हो जाता है।

जिस प्रकार मन देहमय बन जाता है उसी प्रकार मन आत्मामय हो जाता है। सन्त के प्रवचन में सुना है-

आत्मा का मनमय हो जाना भोगाभ्यास का परिणाम है इसी प्रकार मन का आत्मा हो जाना ही समाधि योग है।

यदि तुम विचारों और वासना को हटाते हुए वर्तमान में ठहर जाओ तो उस शून्य में ही पूर्ण का बोध हो सकता है।

जब अहं ज्ञान के साथ कोई आकार नहीं रहते तब आत्मा परमात्मा ही शेष रहता है कुछ भी मेरा मानते ही मैं का आकार बन जाता है, इसी को अहंकार कहते हैं।

समग्र प्रेम जब भवानमय हो जाता है तभी मनोभिलषित भगवान के दर्शन भी होते हैं।

प्रेम की पूर्णता तभी होती है जब प्रेमास्पद से किञ्चित भी भेद नहीं

रह जाता। छिपाने योग्य कुछ अपने में दीखता ही नहीं, सर्वस्व प्रेमास्पद प्रभु का ही है-ऐसा देखना ही अहंकार का समर्पण है।

जो ध्यान योग की साधना में तत्पर हैं, उन्हें भी अकेले होना, मौन होना, शान्त होना, शून्य में चेतना की अनुभूति में ठहरना आवश्यक होता है।

प्रेम योग का ध्यान योग ही अहंकार को विसर्जित करने का उपाय है।

शुद्ध चेतन आत्मा का मनोमय होना भोगी बनना है और मन को समेटकर आत्मामय ही समाधि योग है।

यह भी गुरु निर्णय है कि तुम संसार के सहारे मनके खालीपन को कभी न भर सकोगे।

तुम संसार से घृणा न करो-इसे परमात्मा का अद्‌भुत उत्सव समझ कर तटस्थ रह कर देख लो। परमात्मा निरन्तर है इसी से जीवन प्रवाहित है उसी में जियो, चेतना में रहो जड़ता को ओढ़ो ही नहीं।

सन्त सावधान करते हैं कि तुम्हें निश्चिन्त रहना है तो जीवन में अपना कुछ न मानकर सब कुछ परमात्मा का ही समझो।

सभी प्राणियों को परमात्मा के जीवात्मा समझो सभी को प्रीति भाव से देखो। चाह रहित हो जाओ, निर्णय कर लो कि कोई वस्तु अपने साथ नहीं रहेगी।

कोई भी प्रयत्न न करके अपने में ही परमात्मा को स्वीकार किये रहो।

दृढ़ निश्चय कर लो कि में परमात्मा का हूँ और जो कुछ भी दीखता है यह सब परमात्मा का है।

जब सन्त सद्‌गुरु समझा रहे हैं कि यह सब उसी का है और सब जीव उसी के हैं। तुम भी उसी के हो तब किसी की निन्दा न करो, किसी से

घृणा, द्वेष, कलह न करो, किसी पर क्रोध न करो, किसी को तुच्छ पापी न समझो। सब कुछ परमात्मा का नृत्य है, उत्सव है। सब कुछ बदलता रहता है, नित्य नूतन आता रहता है। फूल और कांटे उसी के हैं।

पापों में, पुण्यवान में परमात्मा निर्विकार प्रतिष्ठित है परन्तु मूर्ख अहंकार हो नित्य सत्य से विमुख है।

मोही, लोभी, सुखासक्त, अहंकार दुःखी होकर कभी सन्त महात्मा यो ज्योतिषि के पास जाता है तब पूछता है कि हमारा दुःख, संकट कैसे कटेगा या हमारा समय कैसे अच्छा आ सकता है, परन्तु यह प्रश्न शायद ही कोई पूछता होगा कि हमारा मन कैसे पवित्र होगा ?बुद्धि कैसे शुद्ध होगी ?अहंकार किस प्रकार अभिमान रहिन होगा ?

यह भी गुरु निर्णय है-तुम अज्ञान में भला बुरा मान रहे हो अब ज्ञान में नित्य एक रस रहने वाले चेतन स्वरूप को जान कर सभी नाम रूपों के प्रकाशक चेतन आत्मा में ही प्रेम स्थिर करो। किसी से घृणा न करो। परमात्मा सभी को लिये हुये है।

कदाचित इतना सद्‌भाव जाग्रत हुआ है कि तुम मन्दिर में भगवान की मूर्ति को भगवान माान कर प्रणाम करते हो अब धीरे-धीरे या शीघ्र ही सभी प्राणियों मैं चेतन सत्ता को भगवान की ही शक्ति जान कर मन ही मन प्रणाम करो।

अनेक नाम रूपों में विराजमान महादेव का स्मरण करो।

कैसे विचित्र मोहमयी माया है, विवेक ज्ञान में देखने से ज्ञात होता है कि मन में जहाँ तक स्मरण, मनन, चिन्तन होता है वह नाम रूपाकार का ही होता है लेकिन जिस चेतन आत्मा से सभी विनाशी नाम रूप भासित हो रहे हैं जिस आत्मा के बिना यह नाम रूप रह ही नहीं सकते वह चेतन स्वरूप अविनाशी आत्मा भूला रहता है।

तुम न कुछ त्याग करो, न कुछ ग्रहा करो केवल नाम रूप धारी चेतन आत्मा का ही स्मरण करो और तभी स्मरण करो जब कोई नाम रूप

याद आ रहा हो।

मिथ्या नाम रूप में सत्य आत्मा को स्मरण रखना ही तो सत्संग है।

मित्र हो या शत्रु हो, साधु हो या असाधु हो, अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, प्रशंसक या निन्दक हो जो कोई सामने आ जाये, उसे आँखों से पहिचानते हुए उसी क्षण ज्ञान प्रकाश में बुद्धि दृष्टि से विनासी नाम रूप के प्रकाशक चेतन आत्मा का स्मरण कर लो। सभी में आत्म स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार करो।

तुम्हारी दृष्टि खुली है तो परमात्मा नित्य निरन्तर सर्वत्र विद्यमान है।

वेदान्त का निर्णय है कि यह दीखने वाला विस्तार सारा विश्व ब्रह्माण्ड जिसमें गतिमान है, सबका आश्रय आधार परमात्मा ही है।

प्रत्येक प्राणी के जीवन में जो गति दीखती है वह जिस चेतना के द्वारा निरन्तर हो रही है वह देहों में व्याप्त आत्मा है।

सद्गुरु समझाते हैं कि तुम जिसे नहीं देख पाते लेकिन जिसके होने से ही देखेते हो, सुनते हो या जो कुछ भी करते हो उस चेतन तत्व को आत्मा कहते हैं। बुद्धि में आत्मा ही ज्ञान स्वरूप है। हृदय में आत्मा ही प्रेम स्वरूप है। नाभिचक में व्यापक आत्मा ही शक्ति स्वरूप है। चित्त में जो व्यापक आत्मा है वही वृत्तिस्वरूप है।

यह आत्मा चेतन जिस पदार्थ से मिलती जिस गुण से मिलती है उसी से तद्रूप हो जाती है।

जिस प्रकार अग्नि जिस आकार के साथ प्रज्चलित होती है उसी स्पमय बन जाती है।

काष्ठ या लोहादि के साथ अग्नि आकारमय है संग न रहने पर अग्नि व्यापक निराकार है।

एक बालक जलता हुआ दीपक हाथ में लेकर निकला, एक सन्त सदुपदेशक ने सामने आकार दीपक को बुझा दिया और पूछा कि बताओ, ज्योति कहाँ गई ? बालक सन्त सगी गुरु भक्त था उसने माचिस निकालकर दीपक जला दिला और सन्त से पूछा कि बताओ ज्योति कहाँ से आ गई ?वह सन्त निरुत्तर हो गया। ज्ञानी होने का अभिमान झुक गया।

आत्मा का बोध होना ही परम जागरण है।

देहाभिमानो को मोह ने, आलस्य प्रमाद ने अज्ञान ने बांध रक्खा है, यही तमोगुण है।

जहाँ तक आसक्ति है फलाकांक्षा है लोभ है वहाँ तक रजीगुण का बन्धन है।

सन्त कहते है-तुम लोभ से, वासना से तथा सुखोपभोग से असंग रहो। सहयोग न दो, दूर से देखते रहो। साक्षी भाव जाग्रत रहेगा।

तुम जहाँ हो वहीं तुम्हारी चेतना हो।

जब सुख की या किसी प्रकार की चाह नहीं रहेगी केवल ज्ञान मात्र शेष रहेगावहीं से अवयय पद सुलभ होता है।

परम चेतन तत्व चिदाकाश में ही अगणित अहंकार एवं मन गतिमान हो रहे हैं।

तुम निर्विकल्प ज्ञान को ही अपना स्वरूप जानकर देह को अपना रूप न मानो।

सब देह रूप विनाशी है, चेतन स्वरूप अविनाशी है। चेतन तत्व ही सर्वमय है। यही मनमय है। मन का मनन न रहे तब आत्मा के होने का बोष होता है।

सत चेतन ज्ञान स्वरूप का अनादर निरन्तर होने वाला प्रतिदिन का अपराध है। आत्मा में ही श्रद्धा एवं प्रेम से अपराध की निवृत्ति होती है।

यह चेतन परम आत्मा ही आनन्द स्वरूप है, और अविद्यापाधि से

बद्ध जीव सुख स्वरूप है, परन्तु अज्ञानवश यह जीव अपने से भिन्न वस्तु व्यक्ति आदि को सुखदाई मान कर पराधीन हो रहा है।

सुखासक्ति रहने तक जीव की इच्दायें, सारा संसार मिलकर भी पूर्ण नहीं कर सकता।

यदि तुम संसार से कुछ न चाहो, किसी से कुछ न चाहो, संसार में कुछ भी अपना न मानो, कहीं भी आसक्ति न रहने दो तब तो अभी स्वाधीन हों सकते हो।

जब तुम ज्ञान में देखोगे तब अहं के आकार की दर्शन में दीवार बनकर सामने आयेंगे, उन्हीं को तोड़ना होगा।

ज्ञान में संसार का कोई नाम रूप भर जाना ही माया का चमत्कार है।

सन्त कहते हैं कि जो निरन्तर है उसी में अपने को देखो, उसी में जीवन का अनुभव करो, उसी के निरन्तर योग का अनुभव करो।

अहं के समस्त आकार मिथ्या हैं, उन्हें न पकड़ना है, न छोड़ना है केवल देखते रहना है।

परमात्मा को नित्य निरन्तर सर्वाकार विश्वाकार देखो। आनन्द स्वरूप परमात्मा ही है। आनन्द की अनुभूति को ही परमात्मा कहते हैं।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है किन्तु व्यक्तिमय है। परमात्मा ही सर्व शक्तिमय है, सर्व गतिमय है, परमात्मा ही सत चेतन है। परमात्मा हमसे भी अधिक निकट निरन्तर विद्यमान है।

देहोऽहमिति संकल्पो महत्संसार उच्यते।'

मैं देह हूँ यह संकल्प महान संसार हो जाता है।

''देहो हमिति संकल्पस्तद्र् बन्धमिति चोच्यते'' यह उपनिषद के वाक्य हैं-मैं देह हूँ यह संकल्प बन्धन का हेतु है। यही महान दुःख का कारण है।

देह को अपनी मानने से ही हानि होने पर, प्रिय वियोग होने पर चिन्ता, व्यथा सन्तापित करती है। देह की ममता रहने तक भय का अन्त होता ही नहीं।

जब ज्ञान में देह भरी रहती है तब तक वेद, शास्त्र पढ़ते पढ़ाते हुए भी भय हो, चिन्ता से शोक से, मोह से विद्वान भी बंघायमान रहते हैं।

पण्डित उसे ही कहते हैं जो भय, शोक, चिन्ता से मुक्त रहता है।

पण्डित उसे ही कहते हैं जो ज्ञान में अविनाशी को स्वीकार कर लेता है, विनाशी से असंग रहता है।

मैं अविनाशी चेतन स्वरूप हूँ-इस स्वीकृत से भय, शोक, चिन्ता से ज्ञानवान मुक्त रहता है।

हमें यह भी समझाया गया है कि एकमात्र सत्य ब्रह्म है, परमात्मा है-यह सुनने मानने से अशान्ति, अज्ञान, दुःख का अन्त नहीं होगा।

जब गुद्धि में ब्रह्माकार वृत्ति होगी, जब मन परमात्मा का ही मनन, स्मरण करेगा तब अशान्ति का दुःखों का अन्त होगा।

तुम सतचेतन आत्मा परमात्मा को जान लो यदि ऐसा न करोगे तब इन्द्रियाँ इतनी दुष्ट हैं कि इनको चाहे जितनी पूर्ति करो परन्तु इनकी तृप्ति नहीं होगी। दुष्ट का यही कुलक्षण है।

यह मन परमात्मा की मायाहै, आठ प्रकार की प्रकृति के अन्तर्गत है। मेरा, पराया का भेद मन में हो रहता है और सत्य सा लगता है। असत, अनित्य से असंग होने के लिये सन्त का संग करो। सन्त वहीं है जिसका ज्ञान विनाशी नाम रूपों से अच्छादित नहीं है, जिसका समग्र प्रम परमात्यामय है। जिसकी बुद्धि नित्य प्राप्त परमात्मा से युक्त है।

यह भी सद्गुरु का निर्णय है कि प्रीति और प्रियतम प्रभु अनन्त दिव्य चिन्मय हैं।

विनाशी वस्तुओं व्यक्तियों से असङ. होने पर योग और ज्ञान

सुलभ हो जाता है।

एक सन्त से बताया कि जब तुम कहते हो कि आत्मा देखने में नहीं आता-यही आत्मा को देखना है। यह ज्ञान ही आत्मा है।

अपने भीतर तुम सच्चिदानन्द हो हो।

किसी तरह तुम सबमें परमात्मा की विद्यमानता न भूलो।

तुच्छ लाभ और हानि में भी परमानन्दमय परमात्मा का स्मरण न भूलो।

अपने चेतन स्वरूप आत्मा में सन्तुष्ट तृप्त रहना ही योगस्थ, आत्मस्थ होना है।

ज्ञान दृष्टि से ही दर्शन होता है। नेत्रों से तो रूप का ग्रहण होता है।

गुरु जन समझाते हैं कि तुम आनन्द के लिये वस्तु व्यक्ति का आश्रय कदापि न लो क्योंकि परमात्मा ही आनन्द स्वरूप है और जीवात्मा सुख स्वरूप हैं।

जब गुरु ज्ञान में देखते हुए आश्रय तथा विषय एवं संग रहित होकर मन शान्त होता है तब सुख स्वरूप आत्मा और आत्मा से अभिन्न आनन्द स्वरूप परमात्मा का बोध होता है।

सन्त सावधान करते हैं-

आनँद सिन्धु मध्य तब वासा।
बिनु जाने कत मरत पिपासा।।
ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशी।।

हम परस्पर किसी के पुत्र, किसी के पति, किसी के पिता आदि बन कर शरीरों के मोही, अभियानी बनते रहते हैं परन्तु हम ईश्वर के अविनाशी अंश चेतन स्वरूप हैं-इसे भूले रहते हैं।

सन्त संग सुलभ होने पर अपने अविनाषी चेतन स्वरूप का बार-बार स्मरण करना ही हम सभी श्रद्धालु जनों की साधना होनी चाहिए।

परमात्मा ही आनन्द स्वरूप है इसे नहीं भूलना चाहिए।

यह गुरु सम्मति है कि तुम मन को अहंकार में तथा माने हुए आकारों को अहं ज्ञान में एवं अहं ज्ञान को, विद्या माया में, विद्या माया को आत्मा में और आत्मा को परमात्मा से अभिन्न जानकर परम शान्ति का अनुभव करो।

यदि तुम अपने चेतन स्वरूप में बुद्धि को स्थिर रख सकोगे तब प्रतिकूलता का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

तुम व्यापक ब्रह्म को अभी आत्मा के रूप में जान कर इसी सत्य का बार-बार स्मरण करो। चेतन स्वरूप में आनन्द ही आनन्द है।

मन को कहीं लगाने का प्रयास न करके मन में व्यापक ब्रह्म का मनन चिन्तन करो।

मन में ही ब्रह्मत्व को ध्यान से देखो।

तुम भगवान को सर्वोपरि पूज्यास्पद मानते हो वे भगवान ही कह चुके हैं। कि मैं आत्मा के रूप में सभी प्राणियों में प्रतिष्ठित हूँ। भगवान के कहे अनुसार कहीं दूर न भटक कर आत्मा को भगवान जानकर आनन्दित रहो, निर्भय रहो, निश्चिन्त रहो, निर्भर रहो।

ज्ञान स्वरूप आत्मा परम पवित्र है और यह देह तो अस्थि, मांसमय, महा अपवित्र है। जो देह और चेतन आत्मा को एक मानता है वह घोर मूढ़ता में है।

ज्ञान में देखने से असत में सत, अनित्य में नित्य तथा जड़ में चेतन एवं महा अपवित्र में परम पवित्र और क्षण-क्षण के पीछे शाश्वत, कण-कण के पीछे सत्ता प्रदायक महान सत्य की अनुभूति होती है।

जो समरस है, व्यापक है, शान्त है, निर्विकार है, नित्य चेतन है, त्रिगुणातोत हैं, निष्क्रिय है, सदा मुक्त ही है। जो अच्युत है, निर्दोष है, चिन्ता से तथा भय से रहित है, निर्मल है, अचल है, अनन्त है, अविनाशी है, यही अखण्ड ज्ञान स्वरूप भगवान है, परमात्मा है, आत्मा है।

हमें समझाया गया है-जब तक तुम सचेतन, ज्ञान स्वरूप आत्मा में ही मन को नहीं लगाओगे, आत्मा में ही बुद्धि को स्थिर नहीं करोगे, आत्मा में ही अहं एवं अहं भर को समर्पित नहीं देखोगे तब तक सुख के अन्त में दुःख से तथा विपत्तियों से मुक्त नहीं हो सकोगे।

राग, द्वेष से रहित शुद्ध ज्ञान द्वारा ही तुम शान्त, स्वस्थ, निर्भय निश्चिन्त हो सकते हो।

अपने ज्ञान से सांसारिक नाम रूप हटाते ही परमात्मा ही शेष रहता है। ऐसा ज्ञानवान संसार में कुछ भी पाकर हर्षित नहीं होता और मिले हुए के छटने पर शोकित नहीं होता। ऐसा ज्ञानवान स्तुति, निन्दा के सन्मान, अपमान से सुखी, दुखी नहीं होता। ऐसा ज्ञानवान कर्ता, भोक्ता अहंकार को साक्षी रहकर देखता है।

यह भी सदगुरु का सन्देश है कि तुम सर्वत्र मनन एवं असत चिन्तन को तयाग कर हृदय में कुछ भी ध्यान न रहने दो तब तुम देखोगे कि सर्व संग का त्याग करते ही मुक्ति सर्वत्र सुलभ है।

ज्ञान में देखते हुए तुम अप्राप्ति की कामना न करो और जो तुम्हें मिला हुआ दीखता है उसे मिथ्या जानकर अपने चेतन स्वरूप में सन्तुष्ट रहो।

हमें सझाया गया है-

किसी के गुणों या दोषों की चर्चा करते हुए तुम्हें याद आ जाना चाहिए कि तुम परमात्मा से विमुख हो।

किसी व्यक्ति के गुण मानने से रोग हो जाता है, और दोष देखने से द्वेष होता है। राग द्वेष जिसमें रहते हैं वह शान्त या मुक्त अथवा भक्त

नहीं हो पाता।

जिम दोष को तुम न मिटा सको उसके मिटने के लिये अन्तर हृदय में विद्यमान परमात्मा से प्रार्थना करो।

परमात्मा अथवा आपका भगवान आपके ही रूप में आप में ही रहता है।

परमात्मा के लिए बाहर न भागो, हृदय गुहा में उतरो, चेतन में ठहरो।

बार-बार स्मरण करो कि परमात्मा तो है ही। इस अहं रूपी अण के भीतर विराट चैतन्य छिपा है, तुम अपने में ही नित्य प्रतिष्ठित का स्मरण करो। परमात्मा से अभिन्न आत्मा की विस्मृति केवल स्मृति से ही दूर हो सकती है।

जिस प्रकार बाहर प्रकाश में नेत्रों से देखा जाता है उसी प्रकार ज्ञान रूपी प्रकाश में प्रज्ञा दृष्टि से वस्तु के सत्य को जाना जाता है।

ज्ञान में असत्य को, अनित्य को देखते-देखते यह ज्ञात होता है कि परमात्मा से अधिक निकट कुछ भी नहीं है।

जो नित्य निरन्तर सर्वत्र सर्वमय है इसे ही अहं, ज्ञान के रूप में अनुभव करो।

सर्वत्र सब में चेतन तत्व परमात्मा को नमस्कार करो। सर्व रूपधारी सच्चिदानन्द स्वरूप का स्मरण न भूलो।

यह गुरु निर्णय है कि विज्ञानमय कोष की जाग्रति में ही नित्य ज्ञान स्वरूप आत्मा परमात्मा की एकता का अनुभव होता है।

ज्ञान में देखते हुये सर्वत्र एक अखण्ड चैतन्य स्वरूप आत्मा की ही सत्ता का बोध होता है।

हमें समझाया गया है कि जिसका किसी प्रकार त्याग नहीं किया जा सकता इसी में सत्य आनन्द है। इसी को जान लो, इसे ही चेतन आत्मा

कहते हैं इस चेतन तत्व की शक्ति द्वारा हो देह में, इन्द्रियों में, मन में, बुद्धि में अहंकार में मसस्त क्रिया होती रहती है। इसी चेतन के कारण पलक खुलती है, बन्द होती है, नाड़ी चलती है, धड़कन आदि जितनी भी क्रियायें है, यह सब तब तक होती रहती हैं, जब तक चेतना को पकड़ रहने की शक्ति जड़ शरीर में संगठित रहती है।

चेतना से अधिक जीव के साथ तन, जन, धन, वैभव, ऐश्वर्य आदि कुछ भी नहीं रहता। क्योंकि परमात्मा की प्रकृति से जो कुछ भी नहीं रहता। क्योंकि परमात्मा की प्रकृति से जो कुछ भी मिलता है वह संसार में ही छट जाता है लेकिन सत चेतन तत्व कभी भी कहीं नहीं छटता।

अविवेकी जीव अपने स्वरूप को तथा अपने सत्य आश्रय को, जो निरन्तर प्राप्त है उसे भूला रहता है और जो नित्य सत्य नहीं है उसे याद रखता है।

अहंकार के न रहने पर आत्मा का बोध रह जाता है अहंकार शून्य होने पर परमात्मा का प्रेम आनन्दमय अनुभूत होता है।

यह भी सन्त निर्णय है कि आत्मा स्वरूप की स्मृति अथवा चेतन आत्मा ही सत्य है, यह जड़ देहादि जगत को वस्तु मिथ्या है-यह दृढ़ निश्चय, ज्ञान स्वरूप गुरूदेव में अटूट श्रद्धा तथा दैवी विधान के मंगलमय होने का विश्वास-यही अनन्त शक्ति से सम्बन्धित बनाते हैं।

तुम अपने में सच्चिदानन्द आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी सत्य न मानो, सब परमात्मा की माया समझ कर केवल देखते रहो कि कब क्या आता है और कब क्या जाता है?परमात्मा ही नित्य निरन्तर सर्वत्र रहता है।

दोषो का त्याग एवं संयम के अभ्यास से मन को शिष्य बना लो तभी ज्ञान स्वरूप आत्मा की परम गुरु होगा। तुम उपदेशक, प्रचारक

अथवा गुरु बनने की कामना से बच सको तो सदगुरु की कृपा का अनुभव होगा।

सन्त ने समझाया कि अभी ज्ञान में देख लो-

ब्रह्म की सत्ता में, चेतना में प्रकृति ही कर्ता, झोत्ता बन रही है यही परमात्मा ब्रह्म का चिदविलास है।

जो आत्मवान, ज्ञान में जाग्रत है उसी को इस महान चिदविलास का अनुभव होता है।

आत्म स्वरूप को विस्मृति में ही मिथ्या जगत सत्य या भासित होता है।

सन्त कहते हैं कि अहं में आत्मा को देखो और आत्मा में अहं को स्फुरित देखो।

अपने चेतन स्वरूप में ही बुद्धि को स्थिर करते रहो आनन्द ही आत्मा का स्वरूप है। क्षण-क्षण आनन्द का स्मरण करते हो।

जहाँ तुम हो वहीं परमात्मा है। यदि वहाँ परमात्मा न होता तो तुम न होते।

तुम देह में चेतन स्वरूप से व्यापक हो, देह को अपना रूप मानने की भूल में न पड़े रहो।

चेतन स्वरूप की निरन्तर अनुभूति ही सत्योपासना है। वासना से उपसना की विस्मृति न होने दो।

....

गुरु-वाक्य

जिस दोष को मिटाना चाहते हो उसके साक्षी हो जाओ।
मुश्किलें होती हैं आसान बड़ी मुश्किल से।
मुर्ख हो पाता हैं विद्वान बड़ी मुश्किल से।
यज्ञ, जप, तप से नहीं, सिर्फ प्रेम से भीतर।

सुलभ दिखता सदा भगवान बड़ी मुश्किल से।।
कहीं जाने से नहीं, मन के ठहरने पर ही।
सरल हो जाता आत्मा-ज्ञान बड़ी मुश्किल से।।
जहाँ कुछ करना नहीं होता सिर्फ खामोशी।
सहज बनता है तभी ध्यान बड़ी मुश्किल से।।
असत आकारों में सत निराकार रहता है।
उसकी हो पाती है पहिचान बड़ी मुश्किल से।।
सदा मौजूद है जो खोजने के पहिले ही।
पथिक को होता इतमीनान बड़ी मुश्किल से।।

गुरु-वाक्य

श्वासों को, विचारों को देखते रहो। शान्त शिथिल बोध मात्र विचारों से रिक्त चित्ताकाश समाधि है। निश्क्रिय शान्त होने पर शक्ति का स्रोत मिलता है। चैतन्य में स्थिर होने में ही आनन्द, स्वास को धीमी करने से विकार वेग शान्त होता है।

....

दण्डदाता में परमात्मा को नमस्कार करो।

....

जब तक तन-मन के साथ हो, तब तक दुःखों से छुटकारा नहीं।

....

ज्ञान में मिथ्या आकार

अहं के आकाार ही सतचिदानन्द परमात्मा की अनुभूति में बाधक हैं।

कुछ भी मेरा मानते ही मैं का आकार बन जाता है माता पिता आदि संबंधित जनों को मेरे मानते ही यह अहंकार पुत्र, भाई, पिता, पति आदि बन जाता है। धन सम्पत्ति को मेरा मेरी मानने से यह अहंकार धनी या निर्धन बन जाता है।

अहंकार जो कुछ भी बना है, वह मेरा, मेरी मानकर ही बना है। मोह, लोभ, अभिमान, आसक्ति, ममता, कामना यही सभी दोष संग से ही बढ़े हैं।

मैं देद हूँ-इस स्वीकृति को जब तक न कटोगे तब तक अहंकार रूपी वृक्ष की जड़ बनी ही रहेगी। देह को अपना रूप मान लेना ही सत्य से विमुखता है।

देह मेरी है-यह स्वीकृति पापों का मूल है। लाखों विद्वान अज्ञान से तथा पापों से मुक्त होना चाहते हैं, परन्तु जड़ को नहीं जान पाते तभी बंधे रहते हैं।

ज्ञान में देखते हुये जब देह के साथ मैं बना नहीं रहता और जब देह मेरी नहीं प्रतीत होती तब अहंकार से मुक्ति मिल जाती है। समस्त दुःख देहाकार बनने के कारण हैं।

ज्ञान में जल तेरा, मेरा भर जाता है तब जड़ता से ज्ञान ढक जाता है और तब ज्ञान खण्ड-खण्ड होकर नाम रूपाकार बन जाता है।

तुम इन्द्रियों में, मन में, बुद्धि में, अहंकार में ज्ञानरूप आत्मा को पहचान लो, खोजने की भूल न करो।

देहाभिमानी की शुद्धि के लिए शास्त्र में यह निर्णय किया है कि कोई उपाय है ही नहीं। प्रयाश्चित भी नहीं है।

आत्मा ज्ञान स्वरूप है, नित्य मुक्त है, साक्षी है, विभु है भ्रम से अभिमानपाश में बद्ध मानना अज्ञान में ही है।

बार-बार श्रवण मनन करो कि मैं स्वयं प्रकाश हूँ, चेतन आत्मा हूँ, निरंजन हूँ, निरपेक्ष हूँ, निर्विकार हूँ, अगाम ज्ञान स्वरूप हूँ, भोग वृत्ति से रहित सच्चिदानन्द हूँ क्योंकि मैं परमात्मा का हूँ, यह सब कुछ परमात्मा का है मेरा कुछ नहीं।

ज्ञान में तुम माया की अद्‌भुत कृति को देखो, यह माया एक को अनेक दिखा देती है। असत् को सत दिखा देती है। हजार घड़ों में हजार सूर्य नहीं है परन्तु दीखते हैं। घट के हिलने से, चलने से सूर्य हिलता या चलता दीखता है जब कि सूर्य एक ही है।

दर्पण में सब कुछ उल्टा ही दीखता है, दांया क बांया या बांया का दांया दीखता है। दर्पण में मुख है ही नहीं, परन्तु आँख से दीखता है।

जो न हो उसे दिखा दे और जो हो उसे छिपा दे यही माया है।

ज्ञान में माया को पहचान लेने पर राग, द्वेष नहीं होता। राम-द्वेष के रहते ज्ञान में अपने दोष नहीं दीखते। राग, द्वेष रहने तक ज्ञान ढका रहता है। ज्ञान में विनाशी वस्तु, व्यक्ति को अपना मानने से लोभ, मोह, ममता, आसक्ति, कामना आदि ज्ञान में भर जाते हैं। संसार में अपना कुछ भी न मानने से, सबकुछ परमेश्वर का जानने से लोभ, मोहदि दोष समाप्त हो जाते हैं।

पराभक्ति परमज्ञान को सन्त एक ही बताते हैं। अनेक नाम रूपों में विराजमान परमात्मा ही महादेव हैं। ज्ञान में न देखने वाले व्यक्ति अपने बनाये हुये मन्दिर में महादेव की प्रतिष्ठा करते हैं।

तुम्हारी बुद्धि समझ सके तब तो नित्य सुलभ चेतन स्वरूप में विश्वास, श्रद्धा, पूज्य, भाव, भक्ति को दृढ़ करो। विनाशी नाम रूपों का मनन, चिन्तन न करो। विनाशी शरीर के चिन्तन से चित्त अशुद्ध होता है।

जब तुम दुःख नहीं चाहते तब किसी वस्तु या व्यक्ति से सुख की

आशा न करो। किसी से सुख की आशा ही मोही, लोभी बनाती है। सुख के कार्मी को ही संसार दुःखायलय है।

चाहे अभी समझो या दुःख भोगते हुये कभी समझोगे कि आत्मा के ज्ञान में बुद्धि स्थिर होने पर, आत्मवान होने पर ही भय, चिन्ता, अशान्ति एवं दुःख का अन्त होगा। पूजा से, पाठ से, जप से, या दान से दुख का जायेगा, लेकिन मिटेगा नहीं।

जब सभी में चेतन स्वरूप परमात्मा ही आत्मा होकर विद्यमान हैं तब तुम किसी प्रतिकूल आचरण न करने के लिये सावधान रहो।

यदि कोई तुम्हें मारे, अपमान करे, कटू वाक्य कहे तब यदि तुम परमात्मा के भक्त हो तो मौन रह कर उसके लिए क्षमा चाहो क्योंकि वे अज्ञान में कर रहे हैं और यदि उसके दोषों, दुर्गुणों को दूर करने की शक्ति है तब उसके हित के लिए दाषों का विरोध करके दोषी प्रकृति का दमन करो। परन्तु शक्ति न होने पर दुःसाहस न करो, प्रभु के विधान पर छोड़ दो। उसके दोष ही उसे दण्ड देकर निर्दोर्षिता प्रदान करेंगे।

जब तुम अपने को दुःख से घिरा हुआ देखो तब मोह से उत्पन्न वियोग के दुःख का तथा लोभ से उत्पन्न हानि के दुःख एवं अभिमान से उत्पन्न अपमान के दुःख को और अभाव से उत्पन्न कामना की अपूर्ति के दुःख को आत्म ज्ञान से दूर करो और धर्म जन्य दु५ख को भोग करके मिटा दो।

तत्वदर्शी महात्मा ने बताया है-

ज्ञान में देखते हुए यह ज्ञात होता है कि समस्त खनिज वर्ग में परमात्मा सत्ता रूप से व्यापक हैं, इसी सत्ता से ही परसारण का समूह धनीभूत होकर साकार हो रहा है।

वनस्पति वर्ग में परमात्मा जीवन रूप में विद्यमान हैं उसी के द्वारा गति दीख रही।

परमात्मा ही पशुवर्ग प्राणिमात्र में चेतना के रूप में दर्शित हो रहा

है।

परमात्मा मानव आकृति में अहं ज्ञान के रूप में विकसित हो रहा है।

स्थावर जंगम सर्व भूतों में अन्तरस्थित नितय मुक्त चिदात्मा को, प्रत्यव-चैतन्य रूप को, ऐसे मुझको मेरा ही नमस्कार है।

खनिज में सत्ता मात्र है। वनस्पति वर्ग में सत्ता और जीवन है। पशु प्राणी में सत्ता जीवन और चेतना है। मनुष्य में इन सबके साथ अहं ज्ञान है। अहं ज्ञान, मिथ्या नाम रूपों को स्वीकार लेता है यही अहंकार है। आकारों के त्याग से ज्ञान मुक्त हो जाये यह हँसावस्था है।

तत्वदर्शी सन्त समझाते है कि तुम सचेतन हो तब असत से जड़ से न डरो। तुम अविनाशी हो, मृत्यु से, मुर्दा से न डरो। तुम दृष्टा हो दृश्य से भयातुर न बनो।

तुम महान शक्तिशाली चेतन आत्मा हो, देह में व्यापक हो, परन्तु देह नहीं हो।

जब मन चच्चल हो तब बार-बार स्वास को बाहर निकाल कर कुछ क्षण स्वास न लेकर पेट को पीठ की तरह खीचें रहो, इसे वाह्य कुम्भक कहते हैं, इस क्रिया से मन शानत होगा, दोष हटेगा।

इस संसार को ओर सुख-दुख को मन की कल्पना समझकर शान्त रहो व्यर्थ ही चित्त को चिन्ता-ग्रस्त न होने दो।

कदाचित काम क्रोधादिक विकारों का वेग बढ़ता दीख जाये तब उठो और स्नान कर लो परमात्मा का स्मरण करो। आत्मा परमात्मा की महिमा का किसी श्लोक या पद द्वारा ज्ञान करो। देह को मन को अपने ज्ञान से भिन्न देखो।

सन्त सावधान करते हैं-

प्राकृतिक विधान से जो भी दण्ड दुःखद प्रतीत होता है उससे तुम्हारा सुधार निश्चित है।

प्रत्येक परिस्थिति प्राकृतिक न्याय है वह मंगलमय है।

प्रतिकूलता आने पर प्रभु के विधान से आई हुई जान कर विरोध न करो, उसे मड.लमय समझ कर स्वीकार करो।

मन में विकार उठे तो प्राणायाम करो। नित्य नियम से बन्ध सहित प्राणयाम करो। क्रमशः बढ़ाते हुये सौ प्राणायाम नित्य करने से महापाप नष्ट होते हैं। तीन वर्ष में अद्भुत पवित्रता का अनुभव होगा, परन्तु पवित्रता का अभिमान न आने पाये, प्रत्युत प्रभु कृपा का स्मरण होता रहे।

सब में परमात्मा के विद्यमान होने का स्मरण बना रहे, यह अभ्यास दृढ़ करो। पवित्र होने का अथवा पुण्यवान होने का अभिमान सदगति में बाधक बनता है।

यह भी गुरु निर्णय स्वमरणीय है-

अहंकार को ही मन के द्वारा सुख-दुख की प्रतीति होती हैं। अनुकूल मानने से सुख और प्रतिकूल मानने से दुःख होता है।

यदि पाप से बचना है तो प्रतिकूल आघात का उत्तर आघात से न दो ठहर जाओ, जितने घण्टे ठहरोगे, उतना ही प्रत्याघात का वेग कम होता जायेगा। होश बढ़ता जायेगा जोश घटता जायेगा। जोश में मन काम करता है और होश में, बुद्धि में विचार की प्रधानता होती है। विवेकवर्ती बुद्धि पणिाम को देखती है वही बुद्धि पुण्य के संकल्प को पाप को संकल्प से रक्षा करती है।

पापमय संकल्प मैं जितनी अधिक ऊर्जा शक्ति नष्ट होगी उतना पुण्य का संकल्प सिथिल होगा।

भोग सुख के संकल्प को योगानुभूति के लिये मोड़ दो। शक्ति एक ही है। शुभ या अशुभ संकल्प मैं शक्ति का सुदपयोग या दुरुपयोग होता है।

काम चिन्तन में ऊर्जा नष्ट न करो आत्म-चिन्तन करो। आत्मा तो निरन्तर नित्य सुलभ ही है।

यह भी गुरु निर्णय है कि तुम सत्य बोलो प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य न

बोलो। उसका प्रभाव प्रतिकूल होता है।

तुमने दूसरे के दोष देखकर आलोचना की तब भारी अपराध बना, उसे दुःख हुआ परन्तु दोष नहीं मिटा नहीं छूटा।

पराये दोष देखने की चेष्टा न करो। यदि दोष दिख जाये तो दूसरों से न कहो। कोई पर दोष की चर्चा करना चाहे तो किसी युक्त से नहीं सुनो।

तुम यथार्थ प्रिय वचन बोलों जो हितकारी हो और अवसरोचित हो। साथ ही थोड़े वाक्यों में हो।

परमात्मा को सर्वगत, सर्व उरालय कहा है तब तो सर्वोपरि सुन्दर वस्तु सभी के हृदय में ही है, परन्तु सबको ज्ञात नहीं है।

सन्त कहते हैं कि तुम अज्ञान में परमात्मा की शक्ति का, परमात्मा के ज्ञान का और प्रेम का अहंकार की भाषा शक्ति में दुरुपयोग न करो।

आत्म-ज्ञानी होकर प्राप्त का सदुपयोग करो। तुम जो कुछ नहीं जानते इसको नाम अज्ञात नहीं है। तुम जो कुछ गलत जानते हुये सत्य मानते हो उसे अज्ञान कहते हैं।

परमात्मा की नाम स्पमय जगदाकार है।

जगदाकार ऊपर-ऊपर है, परमात्मा भीतर-भीतर है।

मन के आगे, बुद्धि के आगे, अहं के आगे देखो तो अगणित शाखामय संसार वृक्ष है लेकिन ज्ञान में मन तथा बुद्धि एवं प्रहंकार के मूल में देखो तो परमात्मा है।

संसार वृक्ष को शाखायें नीचे की ओर हैं और वृक्ष का मूल ऊपर है। ऊर्ध्व मूल अधा शाखा०।

वृक्ष के नीचे उतरने पर काम का विस्तार है, ऊपर चढ़ने पर सच्चिदानन्द राम ही सर्वाधार है।

परमात्मा को और परमात्मा के प्रेम को दिव्य चिन्मय जान लो। प्रीति और प्रियतम दोनों दिव्य हैं, अकथनीय हैं।

प्रीति ही विनाशी नाम रूपों की परिधि की सीमाओं को पारकर

अनन्त अविनाशी परमात्मा में ही समाहित होती है, पूर्ण होती है।

सभी नाम रूपों से असंग होने पर अविनाशी प्रभु का योग और ज्ञान सुलभ होता है।

जीव जब तक अपने परमाश्रय परमात्मा के सन्मुख नहीं होता तब तक सच्चे सुख को प्राप्त नहीं होती।

विनाशी वस्तु व्यक्ति के संयोग से झूठे सुख की प्रतीति होती हैं, प्राप्ति नहीं होती।

झूठे सुख को सुख कहे मानत हैं मन मोंद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद।

तुम बाहर के शत्रुओं के हीछे न पकड़कर भीतर के शत्रुओं को जानों पहचानों उनसे बचो।

काम-क्रोध, लोभादि भीतर के शत्रु हैं। चोर, डाकू तुम्हारा धन ले सकते हैं, परन्तु भीतर का लोभ नहीं ले सकते वही शत्रु हानि होने पर दुःख देता है।

तुम्हारे काम पूर्ति के साधन छीने जा सकते हैं, परन्तु भीतर काम तो बना ही रहता है, वही अभाव से व्यथित बनाता है।

बाहर का प्रिय संयोग नहीं रहता, परन्तु मोह तो बना ही रहता है वही वियोग होने पर दुःख देता है। तुम भीतर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो।

सन्त मतानुसार तुम काम, क्रोध, लोभ को जीतने में समय शक्ति न लगाकर केवल संत स्वयप आत्मा में बुद्धि स्थिर करो। आत्मा को ही जान लो।

ज्ञान को बाहर से मोड़ कर भीतर देखोगे तो तुम्हीं अपने आप में संत हों, चेतन हो, आनन्द हो।

तुम असत नहीं जड़ देहादि पदार्थ नहीं हो, तुम दुःख नहीं हो।

यह भी सन्त मत है-तुम किसी के द्वारा अपने को दुःखी-सुखो मानते हो या दूसरों को दुःखदाता मानते हो तब तुम बहुत ही भ्रम में हो। ज्ञान में नहीं देखते हो।

अपने निन्दक में, दोष दर्शक में परमात्मा को प्रणाम करना न भूलो, तभी तुम सत्संगी हो सकते हो।

निन्दा अपनान को सहन करने से पाप कटता है, और मान प्रतिष्ठा पाने से पुण्य बह जाता है। यह समझ लेने पर भी मान प्रतिष्ठा से कोई लाखों में एक विरक्त रह पाता है।

अहंकार में ही धन, मान तथा सुख पाने की दरिद्रता रहा करती है।

अहंकार जब तक मांगता है तब विवेक जाग्रत नहीं हुआ। यह जब भी मांगता है गलत मांगता है, और बिना मांगे ही जीवन में इतना अधिक मिला है, उस तन को इन्द्रियों तथा मन की शक्ति को अर्थात अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष में छिपी हुई महान शक्ति को समझ नहीं पाता।

अहंकार जब विवेक में जाग्रत होता है तब होश आता है। यह गुरु निर्णय हम साधकों के लिए स्मरणीय है-जीवन में जो कुछ भी वस्तु, व्यक्ति, भूमि-भवन, अधिकार मिला है उन्हें अपने ज्ञान में रख लेने से अर्थात उनहें अपना मान लेने से ही मोह, लोभ अभिमानादि दोषों की वृद्धि हुई है। किन्तु अब उन्हें अपना न मानकर परमेश्वर का ही सब कुछ जानकर तुम लोभ, मोह, अभिमानादि दोषों से मुक्त हो सकते हो। बुद्धियोगी साधक के ये सद्गुरु का यह भी उपदेश है कि तुम लोभ मोह न छोड़ो केवल आत्मा को जान लो, इस आत्मज्ञान में बुद्धि स्थिर होने पर न कुछ छोड़ना रहता है न पकड़ना रहता है। भगवान से समझाया है कि जिसकी आत्मा में ही प्रीति है जों आत्मा में ही तृत्त है तथा जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है उसे अपने लिये कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता है।

तुम्हारे भीतर धन, मान, भोग आदि की जो वासना होगी, सन्त-सहयोग से भी वह नित्य सत्य को योगानुभूति में बाधक बनेगी। यदि

तुम्हें इस बाधा को पार करना है तो अहंकार को समर्पित करना होगा।

प्राकृतिक विधान से मनुष्य जाने अनजाने प्राप्त शक्ति द्वारा जितना ही दूसरों के काम आता है उतना ही अधिक पुण्यवान होता जाता है। पुण्यवान मनुष्य दूसरों के मध्य में बलवान, रूपवान, कुलवान, बुद्धिमान, विद्वान, धनवान, गुणवान, शीलवान, श्रीमान, शक्तिमान, आयुष्मान होता है, लेकिन श्रद्धावान पुरुष, लाखों में कोई-कोई होता है और सहस्त्रों श्रद्धावानों में ज्ञानवान बहुत ही कम देखे जाते हैं उन ज्ञानवारों में आत्मवान पुरुष ही महात्मा माना जाता है।

परमात्मा तो सर्वत्र सभी ओर विद्यमान हैं परन्तु परमात्मा तो जानने वाला, परमात्मा से नित्य युक्त योगी महात्मा कही-कहीं कभी मिलता है।

प्रायः वेषधारी महात्मा तो हजारों लाखों मिलते हैं, परन्तु परमात्मा से निरन्तर युक्त आत्मा को ही महान आत्मा कहते हैं, ऐसे महात्मा के दर्शन बड़े पुण्य प्रताप से सुलभ हो पाते हैं।

आरम्भ में वेषधारी महात्माओं में श्रद्धा रखने वाले श्रद्धालु जन उनकी सेवा करते हुये, तप, त्याग, दान द्वारा पुण्यों से सम्पन्न होते है।

तुम किसी की निन्दा न करो, किसी को पतित, पापी मानकर घृणा न करो क्योंकि तुमसे अधिक यथार्थ परमात्मा उसे देखता है, जानता है। तुम किसी को दण्ड देने का श्रम क्यों करते हो क्योंकि उसका पाप ही उसे उचित दण्ड देने को तत्पर है। तुम न्यायाधोश नहीं हो।

तुम अपने भीतर पापों, अपराधों को देखों और अपने को बचाओ। तुम दूसरों की या दुनियां की चिन्ता न करो। दुनियां का मालिक दुनियां को सम्हाल रहा है। तुम्हें जो काम सौंपा गया है, उसे पूरा करो। तुम साधक हो।

अपने को अपने बनाये हुए दोषों से मुक्त करो, अपना सुधार कर लो।

महर्षि व्यास से कहा है-जब तक देह स्वस्थ है, जब तक वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं हुई है, जब तक आयु नष्ट नहीं होती

तभी तक आत्म-कल्याण का प्रयत्न कर लो। नहीं किया तो आग लगने पर कूप खोदने कोई से कोई लाभ नहीं।

जो पहिले कीजे यतन तो पीछे सुख पाय।
आग लगे खोदे कुआं तो कैसे आग बुझाय।

हमें समझाया गया है-

प्रतिकूलता आते ही परम प्रभु का स्मरण करो।

ज्ञान में देखों-प्रतिकूलता के पीछे प्रभु का मंगलमय विधान है। प्रभु को और प्रभु के विधान को एक ही समझ कर सावधान रहो।

प्रत्येक दृश्य के साथ, प्रत्येक गति के पीछे परमात्मा की सत्ता को न भूलो। परमात्मा में ही सब कुछ हो रहा है।

भगवान ने कहा है कि तत्व ज्ञानी योगी किसी घटना से सम्मोहित भ्रमित नहीं होता, इसलिए तुम सर्वकाल में योगयुक्त होकर रहो।

तत्वज्ञान में देखते हुये तुम मूढ़ता से रहित सर्व पापों से मुक्त रह सकते हो।

सत चित् आनन्द स्वरूप आत्मा ही सभी इन्द्रियों का तथा मन, बुद्धि प्राण का दृष्टा है। (ऋ० ता० ३०)

यह भी गुरु वाक्य स्मरणीय है-कामना को लिए हुए तथा मन अशुद्ध है। निष्काम मन शुद्ध है।

कितने ही शुभ कर्म करो, जप, दान, तप, यज्ञादि करो, आत्म तत्व के ज्ञान बिना कुछ भी करने से मुक्ति नहीं मिलती। (पै०३०)

अविनाशी प्रीति में विनाशी नाम रूप भर लेने पर विनाशी से वियोग होने पर यह प्रीति ही दुःख का कारण बनती है।

विनाशी देह से अपने आपको अलग करते ही परमात्मा के निरन्तर योग का ज्ञान उसी क्षण हो जाता है।

देह जड़ पाँच तत्वों से बनी है। चेतन स्वरूप तो परमात्मा का है।

अन्य वस्तु व्यक्ति का चिन्तन अथवा सर्वचिन्ता छोड़ते ही तुम केवल चेतन स्वरूप हो।

तुम अपने से भिन्न वस्तु का ध्यान, मनन छोड़कर देखो जो शेष है वही ज्ञान स्वरूप आत्मा है।

ज्ञान स्वरूप शुद्ध चेतन अकर्ता है, बुद्धि में पड़ता हुआ चिदाभास अहंकार की कर्ता भोक्ता है।

आत्मा ही अहंय या मैं के रूप में स्फुरित होता है। आत्मा की सत्ता से ही सब कुछ प्रकाशित हो रहा है। यह चेतन तत्व सदा मुक्त है।

परम चेतन ही देह रूप शव में शिव है।

तुम चेतन स्वरूप शिव को प्रत्येक देह में मन ही मन नमस्कार करो।

इस परम चेतन शिव का ही भजन करो।

इस शुद्ध चेतन में ही सब का भास हो रहा है।

यह सन्त निर्णय है कि संसार में जिसे अपना मानते हो उसका विनाश निश्चित है और जिस देहादि में आपने को रख कर मैं कहते हो उसका हास निश्चित है।

अहं में आकार भरे रहना, विनाशी वस्तुओं में ममता रखना उन्हें अपनी मानते रहना दुर्जनता है।

सज्जन वही है जो अपने अविनाशी प्रेम से विनाशी पदार्थों को निकाल देता है।

स्नेह से बैर से, कामना से, द्वेष से, तथा भय से एवं विनाशी नाम रूपों के मनन, चिन्तन से ही संसार से सम्बन्ध जुड़ जाता है।

यदि तुम अज्ञान में विनाशी नाम रूपों के संयोग में सुखासक्त रहोगे तब तो कितने ज्ञानाभिज्ञानी पण्डित बन जाओ, तुम्हें सुख के पीछे दुःख भोगना ही पड़ेगा।

सतगुरू यही समझाते हैं कि तुम जो कुछ भी साधन, भजन, तप,

दान करते हों उसके द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि चाहो। (मन, चित्त, बुद्धि अहंकार-यह चार अन्तःकरण है।)

तुम आत्म बोध चाहो, केवल परमात्मा को ही चाहो। संसार से कुछ न चाहो। तभी तुम्हारे भीतर भय, चिन्ता के लिए स्थान न रहेगा।

गुरु-जन यह भी समझाते हैं कि यह जगत तो ईश्वर की सृष्टि है। और संसार तुम्हारे अहंकार द्वारा अपनी मानी हुई सृष्टी है।

तुम जगत में कुछ चाहोगे तो जगत के आधीन रहना होगा। संसार से कुछ चाहोगे तो सांसारिक पदार्थों की दासता मे रहना होगा।

परम प्रभु की प्रिय शाश्वत आत्माओं
तुम्हें देख कुछ गीत गाने की मन में।
जो कुछ भी अभी तक समझा है मैंने।
वही सब तुम्हें भी सुनाने की मन में।

परम तत्वदर्शी जगत को ही प्रभुमय
प्रभु को जगतमय सतत् देखते हैं
इसी भाव से सर्व रूपों में अपने
सर्वस्व प्रभु को ही पाने की मन में।।

मुझे देखकर कोई धोखा न खाना।
नहीं दे सकूंगा मैं वरदान कोई
कदाचित् तुम्हें जो भी कुछ मिल चुका है
वह छिन जायेगा बताने की मन में।।

तुम्हारा वही है जो तुमसे न छूटे

कभी भी कहीं भी जो तुमको न छोड़े
उसे खोजना मत, पहिचान लेना
न रखना कहीं आने जाने की मन में।।

बहुत सुन चुके हो हमारी भी सुन लो
कभी आयेगा जो अभी उसको देखो
जो कुछ मुझ 'पथिक' को दिखाया गया है
वही सब तुम्हें भी दिखाने की मन में।।

परम गुरु वचन

जिस समय दृष्टा तीनों गुणों से सिवाय अन्य किसी कर्ता नहीं देखता-गुण ही गुण वर्तते हैं-ऐसा देखता है वह तीनों गुणों से परे सच्चिदानन्द धनस्वरूप परमात्मा को तत्वतः जानता है उस समय वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है। (गीता १४,१९)

अहंकार विमूढ़ात्मा

हमें समझाया गया है कि तुम्हारी यह देह माता के उदर में बनी और निश्चित नियम से जीव का देह रूप से माता के उदर से जन्म हुआ। जन्म होते ही आँखों में जो कुछ देख, कानों से जो कुछ सुना, मुख से वही बोलना आरम्भ हो गया।

कुछ समय बीतने पर शक्ति बढ़ते ही जीव माता की गोद से स्वयं उतरने लगा, खेलने लगा। माता खिलौना देने लगी तो उस खिलौने को बालक अपनी वस्तु मानने लगा।

क्रमशः बुद्धि बढ़ने लगी, उस बुद्धि द्वारा माँ के उदर में बनी हुई देह को ही अपना रूप मानते हुए सारे अङो को अपने हाथ, पैर, सर, पेट कहने लगा।

ऊपरी मन से मेरी माँ, मेरे पिता मानते हुये भीतर से मैं देह हूँ, मेरा समान है, मेरी सम्पत्ति है-जो कुछ माता-पिता से मिला उसे अपना मानने लगा, अपना मान कर मोही, लोभी अभिमानी बन गया है।

इसी को अहंकार विमूढ़ात्मा कहते है।

चेतन आत्मा और बुद्धि के सहयोग से बल्ब में प्रकाश की तरह अहं स्फुरित हुआ है।

हम जिज्ञासु साधकों के लिए यह गुरु आदेश है कि सबसे प्रथम यह जान लो कि जो 'मैं' अपने को कह रहे हो इस 'मैं' 'अहं' के आगे संसार है और इसके पीछे परमात्मा है।

जहाँ से 'मैं' उत्पन्न होता है, तुम उसे न जान कर 'मैं' हूँ में हूँ कहते हो और जो कुछ तुम्हें मिला है उसके दाता को न जानकर उसे 'मेरा हैं'-मेरा है' ऐसा मानते हो इस मान्यता से ही अहं के आकार का विस्तार होता है।

इस अहंकार के देह माता के पेट में बनती और निश्चित समय पर देह का जन्म होता है।

इस देह को ही अहंकार अपना रूप मानता है, इसे अपनी देह मातनता है और बुद्धिमान, विद्वान होकर बलवान धनवान, कुलवान, रूपवान अनेकों रूपों का अभिमान बनता है, फिर कभी बिगड़ता है तब दुःखी होता है और जब तक गुरू ज्ञान में अपने उत्पत्ति स्थान को नहीं जान लेता तब तक हजारों बार देह धारण करने पर भी पाप से मुक्त नहीं हो पाता।

अहं ज्ञान जहां से स्फुरित होता है शास्त्र में उसे महतत्व कहते हैं। चेतन तत्व और बुद्धि के योग से अहं ज्ञान प्रगट होता है। चिन्मयी बुद्धि ही अहं ज्ञान की अनादि माता है। इन सत चिन्मयी माता का उपासक जड़ देहमयी माता के गर्भ में नहीं आता।

ज्ञान स्वरूप अहं का सत चिन्मयी मां से विमुख होकर विनाशी नाम रूप को पकड़ना ही परम सत्य से असत, अनित्य की दिशा में पतन है-यह पतन ही पाप का प्रारम्भ है।

नीचे वही गिता है, जिसके साथ कोई वजन, बोझ होता है। केवल ज्ञान स्वरूप अहं अति सूक्ष्म है यह अहं ज्ञान में जब कोई संसार का नाम, रूप, वजन, भार भर जाता है तभी पतन होता है। किसी वस्तु, व्यक्ति को विनाशी नाम रूप को मेरा मान लेना ही भारवाही बन जाता है। अहं ज्ञान मे जब मेरा कुछ भी नहीं रह जाता तभी आकार से सम्बन्ध न रहने पर अहं के निराकार ज्ञान स्वरूप चेतना में जड़ प्रकृति का आवरण नहीं रह जाता।

अहंकार समाप्त होने पर अर्थात अहं ज्ञान में कोई आकार न रहने से ही परमात्मा तत्व की अनुभूति नहीं होती।

अहं जब चिन्मयी प्रज्ञा स्वरूपा मां की गोद में ठहरता है तभी मां की कृपा से परमात्मा तत्व की अभेद अनुभूति होती है।

यही तो परमेश्वर परमात्मा की विचित्र माया है अद्भुत चिदविलास है कि परमात्मा और प्रकृति तत्व के योग से ही यह अहं प्रकट होता है, परन्तु अपनी माता की गोद में खेलते हुए मां को ही भूल जाता है, और शरीर का

जन्म सिज उदर से हुआ होता है उसे मां मान लेता है।

अहंकार विमूढ़ात्मा को इन्द्रिय दृष्टि द्वारा बाहर ही सब कुछ दीखता हैं, परन्तु भीतर स्वयं तक पहुँचने का विवेक जाग्रत नहीं होता।

सदगुरु प्रेरित श्रद्धावान ही भीतर स्वयं तक लौटने का प्रयत्न करता है तभी बाहर की यात्रा बन्द करता है।

विमूढ़ अहंकार मोह, लोभ एवं वासना, कामना के वशीभूत होकर भगवान के सन्देश, उपदेश, आदेश को अपने ब्योंत का बना कर सब कुछ को विकृत अर्थात कुरूप बना दिया है।

लोभी, मोही, कामी, सुखासक्त अहंकार ही दमन को छल, कपट को नहीं छोड़ पाता। विद्वान होने पर भी अहंकार सुखाशक्ति वश दोषी बना रहता है।

परम गुरु भगवान का यह निर्णय बुद्धिमान साधक के लिये स्मरणीय है, भगवान ने कहा है कि जो सृष्टि दीख रही है उसके रचयिता जो परमेश्वर हैं वे इस लोक के भूत प्राणियों के कर्तापन को अथवा कर्मों को या कर्मों के संयोग फल को नहीं रचते हैं फिर भी इस परमात्मा के प्रकाश से प्रकृति ही सब कुछ करती है।

परमात्मा किसी के पाप पुण्य को नहीं ग्रहण करता हैं, किन्तु अज्ञान से ज्ञान ढक जाने के कारण सब जीव विपरीत मान्यता से बंधे हुए हैं।

जब प्रज्ञा विवेक द्वारा अज्ञान की निवृत्ति होती हैं सभी आत्म-ज्ञान द्वारा अर्थात अपने अहं स्वरूप के ज्ञान द्वारा अपने परमाश्रय परमात्मा का बोधस होता है। यही परमागति है।

अहंकार में असत अनित्य नाम रूपों का भर जाना, मोही, लोभी, कामी, संगाभिमानी बन जाना ही अधोगति है।

अहंकार ही पतित होकर पापों से आबद्ध होता है अहंकार ही पुण्य द्वारा पापों के मुक्त होकर उन्नति, सदगति परमगति,ख परम शान्ति को प्राप्त होता है। परमगति प्राप्त होने पर पाप,ख पुण्य दोनो का बन्धन नहीं रह

जाता।

अहं के मिथ्या आकारों के बन्धन से तभी मुक्ति मिलती है जब चिन्मयी प्रज्ञा मातेश्वरी की कृपा का आश्रय लेता है।

विवेक न होने के कारण भोगियों की भीड़ के पीछे चलते हुये जब तक तुम जगत का वस्तुओं, व्यक्तियों को मेरी जान कर मोही, लोभी, अभिमानी बन रहे हो, तब तक ध्यान द्वारा भीतर स्वयं तक नहीं लौट सकोगे इसी लिए बाहर से कुछ न छोड़ो, परन्तु भीतर से अपना कुछ न मानो।

रस्सी को सांप मानकर भयातुर होने में इतना खतरा नहीं है, लेकिन जब सांप को ही रस्सी मानकर पकड़ लिया जायगा तब तो बहुत भयानक है, सृत्यु को हो आमन्त्रिक करना है।

जगत में जो कुछ भी आकर्षक, सुखद प्रतीत होता है वह साँप को रस्सी समझ कर पकड़ने के समान है।

सन्त कहते है कि यह पढ़कर, सुनकर यदि समझ में आ रहा हो तो भविष्य के लिए न टालो, नित्य प्रातः और रात में सोते समय ध्यान से देखो कि जगत में कौन सी वस्तु अपनी प्रतीत होती है, किसके न रहने पर दुःख हो सकता है, उसे ही अपनी न मानकर प्रीति हटा लो।

प्राप्त वस्तुओं के भोगी न बनकर सम्बन्धित व्यक्तियों की सेवा में लगाते रहो उसके बदले में कुछ न चाहो।

महर्षि वसिष्ठ का निर्णय है कि यह प्राणनाशक संसार अपने मन के अज्ञान से ही कल्पित है। यह काल्पनिक सुख, दुःख का बन्धन, ज्ञान में विचार करने पर ही नष्ट होता है।

जो पुरुष विचार दृष्टि से रहित है, उसे जन्मान्ध ही समझना चाहिये और वह दुर्मतिमान मनुष्य सन्मतिवान के मत से शोचनीय होता है।

जो ज्ञान से विचार नहीं करता वह अनेक जन्मों तक सुख के पीछे दुख ही भोगता रहता है।

देश काल करता करम बवचन विचार विहीन।

ते सुरतरू दरिद्री, सुरसरि तीर मलीन।।

विचार से हीन व्यक्ति जो कुछ बोलता है, जो कुछ करता है, उस कर्म के द्वारा किसी भी देश में, किसी समय में यदि कल्प वृक्ष के नीचे पहुंच जाये तब भी दरिद्र ही रहता है ओर पवित्र गंगा के तट में रहकर भी मलीन ही रहता है।

लाखों मनुष्य गंगा में स्नान करते हैं, इससे तन तो शुद्ध हो जाता है परन्तु मन का मोह, लोभ, अभिमान, अहंकार नहीं मिटता।

चेतन आत्मा तो कल्पतरू की तरह निरन्तर सुलभ है, उसी की सत्ता से शक्ति सके, ज्ञान से, प्रेम से प्राणी सन्तुष्ट तृप्त शान्त, तथा पूर्ण आनन्दित रहना चाहता है परन्तु विवेक ने होने के कारण जीवन पर्यन्त दरिद्र ही बना रहता है शान्त, स्वस्थ नहीं हो पाता।

हमारे लिये यह गुरु का उपदेश है कि अब इस अहंकार को परमात्मा, प्रभु के समर्पित देखो।

जब लाभ करो तो गीता में बताई गई दैवी सम्पदा का लोभ करो। मोह करना है तो सभी प्राणियों को प्रभु के ही मानकर उनसे मोह करो ताकि उनके सुख में तुम सुख का आस्वाद ले सको, किसी सन्त से मोह करो जिसके संग से तुम मुक्त भक्त हो सको।

अब अभिमान करो तो परमात्मा के अविनाशी चेतन अंश होने का अभिमान करो और विनाशो जड देहादिक वस्तुओं के आगे अपने को दीन-दीन ने बनाओ।

सर्व चिन्ता परित्यज्य चिन्मात्र परमोभव।

सर्व चिन्ता त्याग कर तुम अपने चेतन स्वरूप का चिन्तन करो।

अशिक्षित विद्या रहित लाखों व्यक्तियों के चारो ओर लाखों विद्वान मूर्खता एवं मूढ़ता के कारण धन हानि से दुःख होते है परन्तु लोभ को दुःख का कारण नहीं जानते।

प्रिय वियोग से दुःखी होते हैं परन्तु जिस मोह से दुख होता है उसे नहीं देखते।

अपमान से दुःखों होते हैं, परन्तु भीतर अभिमान को दुःख दाता नहीं जान पाते

करोड़ो कामो, कामना की आपूर्ति से दुःखी होते हैं, परन्तु भीतर रहने वाले काम को दुःख का कारण नहीं मानते।

लाखों मूर्ख, विद्वान दुःखी होकर किसी वस्तु व्यक्ति को दुःखदाता मानते हैं लेकिन भीतर रहने वाले दोष को दुःखदाता नहीं जान पाते इसी लिये सभी मूढ़तावश सुख के पीछे दुःखी होते रहते हैं। अनेकों बार दुःखी होने पर गुरु ज्ञान में अहंकार की मूर्खता, मूढ़ता को समझ पाते हैं।

कुछ पढ़ना है तो सन्त महात्मा के उपदेशों को ही पढ़ो भगवदगीता के अर्थों का अध्ययन करो।

कुछ सुनने में समय बिताते हो तो संत कथा श्रवण करो। कुछ चर्चा करते हो तो संत चर्चा भगवत चर्चा करों, किसी लोभी, मोही, अभिमानी कामों के अनाचार, दुराचार की चर्चा न करके पाप के हिस्सेदार न बनो।

सन्त सद्गुरु के यह वचन सुनते हुए पढ़ते हुए, कहते हुए भी पर-चर्चा, पर निन्दा, पर-दोष देखने की तथा दूसरों को बताने की आदत आसानी से नहीं छटती, बहुत सजग सावधान रहने की आवश्यकता है।

सद्गुरु कहते हैं- कुछ करते रहने की आदत है तब व्यर्थ कुछ न करके कोई सेवा कार्य करो।

अकेले बठैने में मन ऊबता है, किसी के यहाँ जाने का संकल्प उठता है तब वहीं जाओ जहाँ जाने से किसी को विशेष हर्ष हो, वह ऊबर से दिखावटी न हो या किसी को सेवा का अवसर हो, किसी को दुःख घटे, तब वहीं जाओ अनावश्यक अपनी प्रसन्नता के लिये किसी के यहां जाने में प्रायः विपरीत परिणाम होता है।

पुत्रदादादि संसारः पुंसां संमूढ़ चेतसां।

विदुषां शस्त्र संभारः सद्योगाभ्यास विध्न कृत।।

पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धी जनों के संग से मोही का चित्त विमूढ़ होता है। शस्त्राध्ययन के भार से विद्वानों में विमूढ़ता रहा करती है। साधना में यही विध्न हैं।

परम गुरु भगवान कृष्ण के साथ रहते हुये अर्जुन जैसे विद्वान महारथी भी अपने को धर्म सम्मूढ़ चेतः।

धर्म के विषय में मोहित जान पर शिष्य होकर सम्यक ज्ञान चाहते हैं।

अर्जुन परम सौभाग्यवान शुद्ध अन्तःकरण सम्पन्न महान पुरुष थे इसीलिए अपने भीतर रहने वाली मूढ़ता को पहिचान सके लेकिन आज हम अज्ञान में तुच्छ अभिमान के कारण मूर्ख बने हुये हैं। अर्थात किसी न किसी नशे में बुद्धि मूर्छित है इसीलिये मूढ़ता को नहीं देख पाते।

हम साधकों में किसी को धन का मद है, किसी को कुलवान होने का तथा किसी को रूपवान या बलवान, होने का मद है तो किसी को बुद्धि शास्त्र ज्ञान के मद से मूर्छित है।

सतोगुणी श्रद्धा जाग्रत होने पर संत संगति में साधक को मन की मूढ़ता तथा बुद्धि की मूर्छावस्था का पता लगता है। श्रद्धां न होने पर बहुत विद्यावान को भी पता नहीं लगता।

अशिक्षित मूर्खों के द्वारा समाज में इतनी बुराइयां नहीं फैलती जितनी शिक्षित मूर्खों द्वारा प्रसारित होती है।

भलाइयों का एवं धर्म का प्रसार भी मूर्खता, मूढ़ता से रहित विद्वानों द्वारा ही हो पाता है। पहले भी होता रहा है।

शास्त्र ज्ञान निष्फल सकल जों नहिं होय विवेक।

स्वाद न जानत करछुली चःखत पाक अनेक।।

सन्त सद्गुरू हमें सावधान करते हैं कि तुम अपने नाम के आगे उपाधियों को बताकर अहंकार को संतुष्ट ने करते रहो।

विद्या के द्वारा नित्य विद्यमान सत् परमात्मा को जानो सद असत का विवेक प्राप्त करके मोह से भ्रम से मुक्त होकर आत्मा में ही बुद्धि को स्थिर करो।

सद्गुरु समझाते हैं कि प्रकृति का सर्वोपरि सूक्ष्म अंश अहंकार है, यही कर्ता बनता है। ज्ञान ही अहंकारमय बन रहा है। तुम्हीं ज्ञान स्वरूप हो और अहंकार को ओढ़ कर कर्ता भोत्ता बन रहे हो।

जब तुम सोचते हो कि मैंने ऐसा बड़ा कार्य किया, दान दिया, ऐसी सेवा की, इतना श्रम किया, अभी मुझे यह कार्य करना है इत्यादि भविष्य के चित्र बनाते हो तब विचार करो कि क्या-क्या तुम्हारे अधिकार में है। क्या स्वास लेते ही रहोंगे ?क्या जन्म तुम लेते हो ?क्या तुम धड़कन नाड़ी चलाते हो ? तुम्हारे किये बिना देह के भीतर बहुत बड़ा काम स्वतः हो रहा है।

कल धड़कन बन्द हो जाये तो तुम क्या कर सकते हो ? एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब शरीर वृद्ध हो जायेगा, हाथ पैर उठना चाहोंगे पर नहीं उठेंगे। आँख, कान सही काम नहीं करेंगे, तब अभी तुम्हीं सब कुछ कर रहे हो यह मानना भ्रम है।

सारी व्यवस्था अपने आप चल रही है। जहाँ से सारे संसार की व्यवस्था चल रही है। वही से इस शरीर को व्यवस्था चल रही है।

तुम सारी व्यवस्था उसी के विधान पर छोड़ दो, देखत रहो कब क्या आता है, कब क्या जाता है और तुम्हारे तन मन अहंकार पर क्या प्रभाव पड़ता है।

तुम ज्ञान में देखो अपने साथ ऐसा क्या है जो परमात्मा का है और ऐसा क्या है जो प्राकृति का है ?

ऐसा क्या है जो अहंकार ने बनाया है ?

जो परमात्मा का चेतन ज्ञान स्वरूप सत तत्व है वह तो अविनाशी है, सदा रहेगा। जो प्रकृति से मिला है वह परिवर्तनशील है, बदलता ही

रहेगा। उसकी सुरक्षा की चिन्ता ही व्यर्थ है।

जो कुछ अहंकार ने बनाया है, अर्थात यह मैं हूँ, मेरा है, इसी मोह के कारण जो मान्यता लोभ, अभिमान, आसत्ति आदि दोष बढ़ हैं यह तुम्हें ही छोड़ना पड़ेगा।

यदि अपना मानना न छोड़ोगे तो मृत्यु में सब कुछ छूट जायेगा। शरीर, परिवार, सम्पत्ति, अधिकार यही छट जायेगा; लेकिन मोह, लोभ, अभिमान, आसक्ति, कामना, वासना अहंकार के साथ ही रहेंगे। दूसरे जन्म में फिर इन्ही के अनुसार जीवन यात्रा होगी। इस लिए आत्मवान होकर परमात्मा की अभिन्नता का आनन्द लो।

विनाशी की ममता, कामना, वासना से मुक्त हो जाओ।

यह गुरु निर्णय है कि तुम जो स्वयं सत्य हो, उसका विस्मरण हो गया है झूठ के आवरण को (पर्तों को) को ओढ़ लेने से। यह ओढ़ना उतार कर देखो, तुम पूर्ण सतचिदानन्द में ही हो।

द्वेत मूल महोदुःख नान्यत्त स्यास्यि भेषजम्।
दृष्यमे-तन्मृषा सवमेकोऽहं चिद्रसोऽमलः।

आश्चर्य है कि दुःख का मूल कारण द्वेत ही है, उसका कोई औषधि नहीं है, यह सब दृश्य मिथ्या है, मैं एक अद्वेत शुद्ध चैतन्य हूँ। बोधमात्र हूँ।

अनेक लोग कर्तव्य-विमूढ़ होकर पूछते हैं कि यह संसार परमात्मका ने क्यों बनाया है ?

ज्ञानवान देखते हैं कि परमात्मा ने संसार बनाया नहीं स्वयं संसारमय हो रहा है। संसार ऊपर-ऊपर है, परमात्मा भीतर-भीतर है।

तुम वह योग्यता प्राप्त करो कि प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति में परमात्मा को खोद लो। खोज में न भटको।

शान्त एवं मौन होकर तुम अपने शुद्ध अस्तित्व का अनुभव करो वही तो परमात्मा हैं।

अहंकार के गले बिना परमात्मा का बोध नहीं होता।

यह गुरुपदेश है कि तुम अहंकार को प्राकृति का अंश मानकर चेतन आत्मा को अनन्त परमात्मा से निरन्तर अभिन्न जानकर स्वयं को आत्मा ही समझों देह नहीं।

परमात्मा और जीवात्मा को निरन्तर मिला हुआ अनुभव करना महा-यज्ञ है।

लोक परलोक में सुख सम्बृद्धि चाहने वालों को वाह्य द्रव्य यज्ञ की आवश्यकता है। तुम श्रद्धा पूर्वक ज्ञान यज्ञ को पूर्ण करो इस ज्ञान यज्ञ में किसी सामग्री समिधा की अपेक्षा नहीं है।

सन्त कहते हैं कि यह, वह, मैं, तू का भेद छोड़कर सब आत्मा ही है, आत्मा का सर्वत्र चमत्कार है-ऐसा निश्चय करके तुम संकल्प रहित होकर स्वयं में शान्त स्वस्थ रहो।

जितना ही तुम आत्मा परमात्मा की तन्मयता में शान्त रहोंगे उतना ही आत्म-बोध सद्भाव, सद्विवेक प्रगट होगा।

दुखों को, विपदाओं को तो ईश्वरीय विधान से आते हुए जानकारी स्वीकार करो।

कुछ भी अपना न मानने से, सबसे असंग होने पर मुक्ति सुलभ रहती है।

असंग होने पर शक्ति, शान्ति का सुयोग होता है।

सन्त का कहना है कि जब कभी अशान्त होते हो तब तुम अपने ही द्वारा अशान्त होते ही और शान्ति पाने के लिए दूसरे के पास जाते हो इसीलिए शान्ति कहीं बाहर नहीं मिलती। जब कभी तुम अशान्त होते हों तब मोहवश प्रिय सम्बन्धी के पीछे अशान्त होते हो। लोभवश धन के पीछे अशान्त होते हों।

अभिमान वश मान हानि से अशान्त होते हो।

आसक्ति के कारण देह संग से अशान्त होते हो।

संसार में यदि तुम कुछ भी अपना न मानो तब मोह, लोभ,

अभिमान, आसक्ति नहीं रहेगी, तभी तुम नित्य प्राप्त आत्मा के ज्ञान में शान्ति का अनुभव करोगे।

अपना मानने से ही संग दृढ़ होता है, अपना न मानने से, असंग होते ही भय, चिन्ता दुःख, अशान्ति से मुक्ति मिल जाती है।

तुम्हारे हृदय में ज्ञान और ज्ञानी में श्रद्धा है, तब तुम प्रत्येक देह को विनाशी समझते हुए चेतन आत्मा को अविनाशी जाने रहो।

आत्मा ही अविनाशी हैं, निर्विकार है, शुद्ध है, जन्म मृत्यु से रहित है, ज्ञान स्वरूप है। देह को अपना ज्ञान नहीं है, देह जड़ है, आत्मा नित्य चेतन है। देह और आत्मा का एक मानते रहना प्रथम अज्ञान है।

हमें समझाया गया है कि तुम अज्ञान के लिए कुछ न करो लेकिन ज्ञान में अथवा प्रेम में जो विनाशी नाम रूप सुख-दुख स्वीकार कर लिया है उसे ही हटा दो। अन्धकार को हटाने के लिये कुछ नहीं किया जा सकता, प्रकाश के लिये ही करना होता है।

अहंकार मिटाने के लिये भाग दौड़ श्रम न करो, तुम अहंकार को समझ लो।

अहंकार को छोड़ने के लिए यदि तुम भूमि भवन, पद परिवार का त्याग कर साधु-सन्यासी बनोगे तब तुम्हें पता भी न चलेगा यह अहंकार ही त्यागी, विरक्त, साधु, सन्यासी बनकर त्याग सन्यास का भी भोक्ता बनेगा।

हमें समझाया गया है कि तुम परमात्मा से कभी भिन हो ही नहीं सकते। तुम परमात्मा के हो ही और परमात्मा में ही निरन्तर हो।

परमात्मा को पाने के लिए कहीं जाना नहीं है; केवल यह जान लेना है कि असत् संग के प्रभाव से सत् परमात्मा की विस्मृति हो रही है। इसीलिए परमात्मा केवल स्मरण मत्र से ही नित्य निरन्तर सुलभ, अथवा प्राप्त ही अनुभूत होता है।

हमें यह भी समझाया गया है कि प्रथम तन की शुद्धि के लिए आहार शुद्ध करो और नियमित सेवाव्रती होकर श्रम करो।

इन्द्रियों की शुद्धि के लिए संयम रूप में तप करो। धन की शुद्धि के लिए दान करो। मन की शुद्धि के लिये सन्तोष करो आत्मा में लगाओ।

बुद्धि की शुद्धि के लिए, आत्मा में ही बुद्धि को स्थिर करो, अहंकार को शुद्धि के लिये परमात्मा को ही अपना सर्वोच्च जानकर संसार की वस्तुओं या व्यक्तियों को अपनी न मानो।

यह गुरु निर्णय है कि-

तुम आनन्द स्वरूप हों, न दुखी बनो न किसी को दुःखी बनाओ। न फूटों न फोड़ो। नित्य युक्त रहो। असत के, अनित्य के दृष्टा रहो।

सत असत को विचार करनके सत का ग्रहण विवेक है। नित्या-नित्य को, जड़, चेतन की तथा देह से चेतन आत्मा को पृथक देखना विवेक है।

जो पदार्थ को प्रकाशित करै, उसे ही ज्ञान कहते हैं।

जो स्वयं को जाने और अपने से भिन्न पदार्थों को जाने वहीं ज्ञान है। ज्ञान ही चेतन है। जो न जाने वह जड़ है।

अपने निर्विकार चेतन स्वरूप में कामी, क्रोंधी, ईर्ष्यालु द्वेषु, निन्दक का प्रभाव पड़ने ही न दो और स्वयं अपनी ओर से किसी पराश्रित सुख के कामी न बनो, किसी से ईष्या, द्वेष न रक्खो, क्रोध में शक्ति का दुरुपयोग न करो।

बहुत सावधान रहोगे तभी शक्ति, समय को दुरुपयोग से बचा सकोगे। दुरुपयोग से जो बचाओगे उसी से तुम्हारी उन्नति, सदगति हो सकेगी।

ज्ञान में देखने वाले सन्त ने समझाया कि जितना ही तुम शून्य एवं शान्त होकर ठहरोगे, उतना ही पूर्णता प्राप्ति के अधिकारी हो जाओगे।

तुम अन्धकार मिटाने के लिऐ कोई श्रम न करो, प्रकाश प्राप्ति के लिए श्रम करो। प्रकाश होते अन्धकार स्वतः ही मिट जायेगा, इसी प्रकार अज्ञान मिटाने के लिए श्रम को आवश्यकता नहीं, प्रत्युत ज्ञान में देखने के लिये निरन्तर सावधान रहने की आवश्यकता है।

एक सन्त ने कहा है कि अन्धकार चाहिए तो प्रकाश बुझाओ, अन्धकार नहीं चाहिए तो प्रकाश जलाओ।

ज्ञान में देखो-आसक्ति रहने तक तुम कुछ भी साधना करोगे उससे दुःख न मिटेंगे।

सुखासक्ति वश कभी न कभी दुःख भोगना ही पड़ेगा, इसके अतिरिक्त क्रियासक्ति, कर्मासक्ति, फलासक्ति, सम्बन्धासक्ति, स्थानासक्ति, वाह्य मन्दिर, मूर्ति में आसक्ति भी कभी न कभी दुःखद बन जाती है।

सन्त ने समझाया है कि तुम अविवेक से जिस सुख को सदा भोगना चाहते हो और दुःख से बचना चाहते हो, उसे ज्ञान में देखोगे तब सुख का लालच और दुःख का भय नहीं रहेगा क्योंकि सुख-दुःख दोनों मिथ्या हैं मानने के कारण सुख दुःख का बन्धन है।

वास्तव में सुख के अनन्तर दुःख है और दुःख के अनन्तर सुख की प्रतीति है। यह दोनों निश्चय करके जीव के लिए असंध्य हैं।

सुख दुःख दोनों त्यागे नहीं जा सकते अतः समस्थित रहने क विवेक जाग्रत रखना चाहिए।

यदि आसक्ति ममता को अभी छोड़ने की योग्यता नहीं है तब किसी आत्मत्व वेत्ता ज्ञानी मे या भगवद्भक्त विरक्त सन्त में ममता आसंक्ति दृढ़ करो। ज्ञानी; भक्त, विरक्त सन्त की संगति से तुम्हारी देहाशक्ति अथवा सुखासक्ति कुछ समय में सत्या रक्ति, भगवदभक्ति में बदल जायेगी और सांसारिक नाम रूपों से अनासक्तिं दृढ़ रहेगी।

सन्त सावधान करते हैं-जगत में जो कुछ भी मिलेगा या मिला है उससे पहले ही परमात्मा मिला हुआ है और मिला ही रहेगा। यह सन्त सन्देश यदि भूलते रहोगे तब असत संग से मुक्ति नहीं मिलेगी।

अहं ज्ञान से जितना ही आकार छते जाते हैं उतना यह प्रेम से भरता जाता है।

इच्छाओं के रहते अहंकार दरिद्र ही रहता है याचना समाप्त नहीं

होती। इच्छाओ का अन्त है ही नहीं।

जब तुम कुछ भी न चाहोगे तब स्वतन्त्रता अनन्त हो जायेगी।

जब कभी तुम्हें भजन, ध्यान; पूजा पाठ आदि साधना न करने का खेद हो तब ध्यान से देखो कि तुम्हारे किये बिना हो शरीर में मन में क्या-क्या हो रहा है। वह सब अद्भुत कार्य जिसकी शक्ति से हो रहे हैं, उसी महान में इस कर्ता अहंकार को समर्पित करो। कृतज्ञयता पूर्वक ऐसे सब समर्थ प्रभु की स्तुति करो।

परमात्मा की चेतना से अधिक तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है।

जो वर्तमान में नहीं है उसका स्मरण हटाते रहो।

परमात्मा निरन्तर है इसीलिए परमात्मा का स्मरण नहीं रहता।

सन्त का कथन है कि जब तुमने सुन लिया कि परमात्मा अथवा ईश्वर हृदय में प्रतिष्ठित है, फिर तुम अपनी प्रतिष्ठा चाहते हो तब तो मूर्ख ही हो जब तुमने यह स्वीकार कर लिया कि संसार में जो कुछ भी है सबका मालिक परमेश्वर है तब तुम किसी वस्तु या व्यक्ति के मालिक बनते हो तो यह कितनी बड़ी बेईमानी है, अनाधि कार चेष्टा है और मन को महामूढ़ता है। मूढ़ता त्याग कर ज्ञान में देखो।

यह जो कुछ भी दृश्य अदृश्य है वह सब परम प्रियतम परमात्मा का है। सभी कुछ परमात्मा का जानवर उसके प्रति स्नेह से कृतज्ञता से भरे रहो और प्राप्त वस्तु से निकटस्थ व्यक्तियों की निष्काम सेवा में तत्पर रहो।

परमात्मा की चेतन शक्ति द्वारा बाहर, भीतर, तन, मन, बुद्धि आदि को गतिमय देखो।

जब तुम्हरे हृदय में परमात्मा को पाने के लिये कुछ करने का करने का विचार उठे तभी देखो कि हमारे कुछ किये बिना ही भीतर बाहर कितने महान कार्य हो रहे हैं।

अनेकों अपराधों मे अपने ज्ञान-स्वरूप के साथ निरन्तर सुलभ शान्ति का विस्मरण बहुत भारी अपराध है। यह अपराध ज्ञानाग्नि से ही

भस्म हो सकता है।

दृढ़ निश्चय कर लों कि मैं देह नहीं हूँ-यह देह मेरी नहीं है। अपने सतचित स्वरूप का स्मरण करते रहो।

चित्त चंचल हो तब जोर से पूरक रेचक करो, इससे शिथिलता जड़ता दूर होगी।

अशुभ का विरोध न करो, शान्त रहों, अपने आप में बुद्धि को स्थिर करो।

चिन्ताओं, कामनाओं के शानत होने पर तथा ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध से शक्ति को बचाते रहने से बुद्धि का विकास होता है।

सभी के प्रति शिष्टाचार, विनय भाव, कृतज्ञता एवं प्रेम की मधुरता से मन वाणी को भरे रहो।

प्रीति में विनाशी नाम रूपों को स्थान न दो। प्रीति में जो भर लोगे उसी से प्रीति ढक जायेगी और उसीमय हो जायेगी।

सांक्य और वेदान्तशास्त्र में या सन्तों मे जगत को, प्राकृतिक सृष्टि को पाँच तत्व से निर्मित बताया है। सृष्टि के कुछ पदार्थों को अविवेक वश जीव ने जो मेरा तेरा मान लिया है यही अपना संसार है।

जो पकड़ में न आये, सरकता ही जाये वहीं संसार है। जो कभी स्थिर न रहे वही जगत है।

जगत ईश्वर की सृष्टि है और संसार, जीव की अपनी मानी हुई सृष्टि है।

जीव अपनी बनाई हुई सृष्टि में और ईश्वरीय सृष्टि में अपने कर्मानुसार पाप-पुण्य का भोक्ता बनता है।

जिसके द्वारा अपनी और दूसरों की उन्नति हो वहीं पुण्य कर्म है। जिसके द्वारा अपनी और दूसरों की अवनति हो वही पाप कर्म है।

विवेक पूर्वक वैराग्य तथा सत्यानुराग एवं सेवा में शक्ति सम्पत्ति योग्यता को लगाते हुए दोषों का त्याग यही उन्नति है। राग, द्वेष मोह, लोभ

अभिमान आदि दोषों की वृद्धि ही अवनति है।

सन्त कहते हैं कि बुद्धि द्वारा विचार पूर्वक अनेक घटों में एक मृतिका (मिट्टी को देखना), अनेक आभूषणों में एक स्वर्ण तत्व को देखना, इसी प्रकार अनेक नाम रूपों के प्रकाशक एक चेतन आत्मा को देखना ही ज्ञान यज्ञ है।

सारा विश्व ब्रह्म में ही है, ब्रह्म ही विश्वमय है इस ज्ञान से राग द्वेष मिटता है।

परमात्मा ही प्रत्येक कण में क्षण-क्षण में सत्ता शक्ति चेतना के रूप में विद्यमान है-यह अनुभूति ही साक्षात्कार है।

निष्काम यज्ञ से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और पूर्ण वैराग्य से निष्काकता आती है।

अन्त-करण शुद्धि होने पर निष्काम प्रेम पूर्वक सर्वात्मा विष्ण के चिन्मय नाम का संकीर्तन करते हुये सर्वत्र परमात्मा को ही स्मरण करो।

स्तुति, सेवा, नमस्कार के द्वारा सर्वनाम रूप धारी आत्म देव की उपासना में तल्लीन रक्खो।

बहुत ही अनोखी बात परम गुरु भगवान ने युधिष्ठर को समझाई है उसे बहुत ही कम विद्वान जन जानते हैं।

परमात्मा का जीवात्मा जब मन के माने हुए आकारों को अपने में रखकर मेरा मेरी मानने लगता है तभी जो परमात्मा का प्रेम, परमात्मा की भक्ति के लिये परमात्मा के प्रति होना चाहिये वह प्रेम विनाशी पदार्थों को ममता के रूप में जीवात्मा के बन्धन का कारण बन जाता है।

ममता यस्य द्रव्येषु मृत्योरास्ये स वर्तते।।

जो बन में रहकर बन फल खाकर निर्वाह करता है उसको भी यदि पदार्थों में द्रव्यों में ममता है तो वह मृत्यु के ही मुख में जा रहा है।

द्वयक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्माशाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शास्वतम।।

मम (मेरा) यह दो अक्षर का स्मरण मृत्यु में ले जाता है। नमम (नहीं है मेरा कुछ भी) यह तीन अक्षर का स्मरण सनातन ब्रह्म की प्राप्ति का कारण होता है।

ममता ही मृत्यु की दिशा है और ममता का त्याग सनातन अमृतत्व की अनुभूति का साधन है।

ममता से ही कामनायें उत्पन्न होती हैं, कामनाओं की मूर्ति से ही सुखासक्ति तथा वस्तु, व्यक्ति में आसक्ति दृढ़ होती है इसलिए जो विद्वान बुद्धि को मूर्खता एवं मन की मूढ़ता को ज्ञान में जान लेते हैं वे ही कामनाओं का त्याग कर पाते हैं।

जो विद्वान होकर भी मूर्ख हैं अर्थात जिनकी बुद्धि, धन मद या विद्या मद या बल मद, कुल मद से मूर्छित हो रही है जिनका मोही, लोभी, कामी मन देह में, धन में, सुख में अटक रहा है ऐसे मूढ़ मनुष्य दान; पुण्य, तप, जप, यज्ञानुष्ठान, संकीर्तन अखण्ड पाठ, रुद्राभिषेक तथा ज्ञानोपदेश सुनते पढ़ते हुये और करते हुये भी शान्ति मुक्ति भक्ति को प्राप्त नहीं होते क्योंकि ऐसा विद्वान धर्मशास्त्रों को पढ़ सुन कर भी मूर्खता एवं मूढ़ता को नहीं समझ पाता।

मूर्ख एवं मूढ़ व्यक्ति विद्वान होकर भी जो कुछ भी शुभ कर्म, पुण्य कर्म करता है, उसके द्वारा अहंकार को ही तृप्त, सन्तुष्ट करता रहता है।

गुरु वाक्य

गुरु ज्ञान में अपने स्वरूप का दर्शन करो और स्वरूप दर्शन के लिए पहले अपने अहंकार के साथ रहने वाले अज्ञान को देखो, भ्रम को जान लो।

यदि तुम किसी दुःखी का कष्ट हटा दोगे, किसी प्यासे को जल पिलाकर, भूखे को भोजन देकर, किसी अभाव पीड़ित को वस्त्र देकर, एवं किसी तिरस्कृत को मान देकर, प्यार देकर सन्तुष्ट, प्रसन्न करलोगे तो उसके बिना बोले ही हृदय की प्रसन्नता आर्शीवाद बन जायेगी। इसके विपरीत यदि किसी को प्रसाद वश, लोभ वश अहंकार के गर्व में दुख दोगे तो उसकी मूक वेदना शाप बन जायेगी।

श्रद्धा को अश्रद्धा से बचाओ

श्रद्धा परमात्मा की सर्वोपरि दिव्य शक्ति है।

प्रार्थी की अभिलाषा पूर्ण करो, दाता का प्रिय करो, ऐसी ऋग्वेद में श्रद्धा से प्रार्थना की गई है।

श्रद्धा से परमार्थ की उपलिब्ध होती है।

श्रद्धा से हो इस्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।

श्रद्धा सभी सम्पत्तियों से श्रेष्ठ दैवी सम्पदा है।

अत्यन्त आदर पूज्य भाव से सत्य की आराधना श्रद्धा द्वारा ही सम्भव है।

श्रद्धा आत्म-बल है, यह वैराग्य से स्थिर होती है।

श्रद्धा स्वरूप भगवती को नमस्कार किया जाता है।

श्रद्धा से ही सदज्ञान उपलब्ध होता है।

श्रद्धावान ही साधना में तत्पर होता है, इन्द्रियों में संयम कर पाता है।

श्रद्धा के जाग्रत होने पर ही अहंकार सत्य के लिये झुकता है और पूज्यास्पद गुरु की शरण लेता है।

श्रद्धा से ही यज्ञ, दान, ता धर्मानुष्ठान सार्थक होते है।

श्रद्धा रहित अहंकार, मुक्ति, भक्ति, शान्ति को प्राप्त नहीं होता।

श्रद्धावान ही गुरु की उपासना में, ज्ञान में सम्यक दर्शन के अधिकारी होते हैं। जिनकी प्रज्ञा दृष्टि खुली है वही देख पाते हैं कि यह जगत किस नियम से परमात्मा से उत्पन्न होता है, परमात्मा में गतिबद्ध रहता है और परमात्मा में ही विलीन होता है।

इस संसार चक्र में सभी प्राणी धूम रहे हैं। चक्र गोलाकार होता है, उसके मध्य केन्द्र-बिन्दु से यात्रा का आरम्भ होता है।

चक्र में घूमते-घूमते कभी ऐसा किनारा आता है जिसके बाहर अनन्त चिदाकाश है और चक्र के भीतर क्षण-क्षण सरकते रहने वाली गति को संसार कहते है।

ज्ञान में देखते हुये जो महापुरुष इस संसार चक्र की सीमा को देख लेते हैं वहीं सीमा के बाहर असीम अनन्त सतचिदानन्द परमात्मा से अपने को अभिन्न जानकर, भय, चिन्ता, अशान्ति, दुःख से मुक्त हो जाते हैं।

एक सन्त ने समझाया है कि संसार में सदगुरु नहीं खोये हैं; बल्कि शिष्य खोये हुये हैं।

धर्म विद्यमान है, पर अभीप्सा खोई हुई है। अभीप्सा कहते हैं गहरी प्यास को। श्रद्धा वही सुन्दर जब ज्ञान की प्यास हो।

सत्य परमात्मा नहीं खोया है, उसकी आकांक्षा खोई है

सन्त संयोग से ही श्रद्धावान में जो खोया है वह मिल जाता है।

सन्त का निर्णय है कि तुम प्रेम में केवल परमात्मा को ही भरपूर देखो-इस आत्मीयता से ही भक्ति हो जाती है, प्रेम में अन्य वस्तु व्यक्ति को महत्व न दो।

संसार में अपना कुछ न मानो इस असंगता से मुक्ति सुलभ हो जाती है।

किसी व्यक्ति को अपना मानकर अधिकार न जमाओ, इस प्रकार निर्मम होते हो निष्कामता पूर्ण हो जाती है।

अहंकार में ही जगत भरा है।

'अहं' के 'मैं' के अभाव में केवल परमात्मा ही शेष रहता है। मोह से, लोभ से दबी हुई बुद्धि परमात्मा तत्व के जानने में असमर्थ रहती है क्योंकि वह बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती।

आत्म ज्ञान द्वारा अथवा भगवद प्रेम द्वारा जिसके भीतर काम, क्रोध, लोभादि शत्रुओं का नाश हो चुका है, जिसकी स्थिति ब्रह्म में हो चुकी है ऐसे महात्मा सन्यासी सन्त का मुसंयोग विशेष सचिंत पुण्यों से सुलभ

होता है।

यह भी गुरु निर्णय है कि अपने स्वाभावानुसार अज्ञान में भी यदि कहीं श्रद्धा पूर्वक पूज्य भाव से दान तथा सेवा में शक्ति सम्पत्ति का उपयोग हो जाता है तब उसका फल भगवद विधान से शुभ सुन्दर कल्याणकारी ही होता है।

यह कहावत है कि यदि हंस का दर्शन करना है तब पक्षियों को चारा डालते रहो, कभी न कभी उनके मध्य हंस भी आ जायेंगे। इसी प्रकार सन्त महात्मा मान कर श्रद्धा करने वालों को कभी न कभी सच्चे सन्त, महात्मा मिल ही जाते हैं या फिर प्रभु कृपा से सेवा प्रेमी साधक स्वयं सन्त हो जाता है।

परम गुरु भगवान ने कहा है 'अहमात्मा' मैं आत्मा हूँ। सभी प्राणियों में चेतन आत्मा के रूप में परमात्मा को पहिचानना है। सभी नाम रूप इसी परमात्मा की सत्ता से; इसी की चेतना से प्रकाशित हो रहे हैं।

अपनी समझ अथवा योग्यतानुसार किसी सन्त, महात्मा की जो श्रद्धावान सेवा करता है उसमें नम्रता; सरलता, उदारता, सहिष्णता आदि दैवी सम्पदा बढ़ती है।

श्रद्धा पूर्वक सेवा करते हुए, सेवा के बदले में अहंकार यदि धन, मान भोग तथा प्रिय वस्तु एवं व्यक्तियों का संयोग नहीं चाहता और जिसकी श्रद्धा को अश्रद्धा आच्छादित नहं कर पाती वह श्रद्धावान किसी भी महात्मा में श्रद्धापूर्वक गुरु भाव से सेवा करते हुये पापों से मुक्त होकर पुण्य प्रभाव से सच्चे महात्मा का अदृश्य रूप में कृपा पात्र हो जाता है।

यह सन्त सम्पति है कि तुम सच्चे, दुर्लभ महात्मा की खोज न करो सावधान होकर शिष्यत्व प्राप्त करो।

वास्तव में सच्चे महात्मा का सुलभ होना दुर्लभ है; लेकिन उससे भी अधिक दुर्लभ सच्चे शिष्य का मिलना है। शिष्यत्व प्राप्त कर लेने पर सच्चे महात्मा स्वयं ही शिष्य की खोज लेते हैं।

तुम्हारे हृदय में यदि किसी महात्मा साधु में श्रद्धा जाग्रत हो रही है तो श्रद्धा को देह में न अटकने दो।

श्रद्धा वही कल्याणकारी है जो सत्य ज्ञान से सम्बन्धित हो इसलिए देह को गुरु न मानकर ज्ञान को गुरु, समझकर ज्ञान का आदर करो।

प्यासे, भूखे की तरह ज्ञान की अभीप्सा लेकर गुरु की उपासना, सेवा में तत्पर रहो।

गुरु के प्रेमी भक्त होकर धन, मान, भोग, सुख चाहोगे तो शान्ति, मुक्ति भक्ति से विमुख रहकर अन्त में दुःख ही भोगना पड़ेगा।

श्रद्धावान होकर गुरूज्ञान द्वारा यदि तुम अपने में और सभी को परमात्मा का अनुभव न कर सके; तब तो निश्चित ही संसार के नाम रूपों द्वारा ठगे जाओगे।

गुरु विवेक के सहारे अहं को मेरापने के आकारों से मुक्त करो।

देह को तथा वस्तु व्यक्ति को अपनी मानने से अहं-कार देहाध्याल बना ही रहता है-यही सत्व के बोध में बाधक होता है।

यह भी सन्त का निर्णय है-जब तक तुम्हारी बुद्धि मोह रूपी दलदल में फंसी है, जब तक चित्त आशा से व्याकुल हो उठता है, मन कामनाओं से अधीर है, अहंकार, सन्तोष से रहित है तब तक सदुपदेश का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

संसार की दिशा में अनुकूलता, प्रतिकूलता मन से मान ली जाती है, अनुकूलता के राग वश ही सुख की प्रतीति होती है, तभी प्रतिकूलता का दुःख होता है।

परमात्मा की सर्वमय है, यही सब कुछ है यही बार-बार मनन, चिन्तन करो। परमात्मा के अतिरिक्त सत असत कुछ भी नहीं है।

सन्त ने बताया कि लाखों नर-नारी समुदाय के मध्य में कोई श्रद्धावान होते हैं वह गुरु के दर्शन से, सेवा से ही प्रसन्न होते हैं। कोई भगवान के दर्शन चाहते हैं, कोई तत्व ज्ञान चाहते हैं, कोई सिद्धियां चाहते

हैं; परन्तु ऐसा साधक मिलना मुश्किल है जो अन्तःकरण की शुद्धि के लिए व्याकुल हो।

अनेक साधक मन को बस में करने की साधना पूछते हैं मन की चंचलता से उतने समय तक ही खिन्न होते हैं, जितने समय तक भगवान का नाम का जप करते हैं या मूर्ति का ध्यान करते हैं।

सन्त का निर्णय है कि तुम मन को उतने ही समय तक स्थिर देखना चाहते हो, जितने समय तक भजन, ध्यान करते हो।

विचार करो कि तुम चंचल मन को देखने वाले कौन हो और मन को चचंलता को तुम कहां, किसमें ठहर कर देखते हो ?यदि चचंल मन में बैठकर मन को चंचल देख रहे हो तब तो अपने ऊपर कृपा करो तुम मन से अलग हो जाओ और देखों कि मैं नित्य चेतन परमात्मा में हूँ लेकिन मन प्रकृति में है।

जीवन में प्रारब्धानुसार जितनी वस्तुओं का तथा जितने व्यक्तियों का संयोग होता है, वह भोग के लिए होता है, लेकिन सन्त संयोग भोगों की सीमा के पार नित्य योग के लिये होता है। सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही समझा जा सकता है कि संयोग अपने से भिन्न वस्तुओं, व्यक्तियों का होता है; लेकिन जो अपने से नित्य अभिन्न है, अखण्ड है, अनन्त है उसका संयोग नहीं होता क्योंकि उसका सदा से ही नित्य योग है। उसकी अनुभूति सन्त संयोग से होती है।

मानव जीवन में जब निष्काम पुण्य संचित होते हैं, जिन पुण्यों के बदले में संसार से कुछ नहीं चाहा गया उसी पुण्य से सन्त संयोग हुआ करता है। इसे ही भगवत्कृपा कहते हैं।

बड़े भाग्य से सन्त-संयोग सुलभ होने पर जो मैंने समझा है वही अपनी बात सुनने वाले श्रद्धालुओं को समझायी जा रही है। कोई बात सुनकर मान लेना किसी बालक के लिये भी सरल है; लेकिन उसे समझ लेना, जान लेना विद्वान के लिये भी कठिन है।

सन्त संग से यह ज्ञात हुआ कि-

सद-ज्ञान को अथवा आत्म ज्ञान को अथवा अविवेक का दुष्परिणाम दुःख भोगते हुये जब सदविवेक की सच्ची प्यास जाग्रत होती है तब साधक को संसार में कुछ भी पाने, भोगने की चाह नहीं रह जाती है तभी साधक को अपने माने हुये गुरु द्वारा ही सदगुरु की प्रेरण मिलने लगती है।

सदगुरु कृपा से कल्याणर्थी साधक को अपनी अहंकृतियों में भूल का तथा भ्रम का, सदअसद् का विवेक जाग्रत होती है।

अविवेकी अहंकार कुछ सचित पुण्यों के प्रभाव से सन्त संग में बैठता है, सन्त संग के प्रभाव से कदाचित भगवद भजन के नाम पर जप, कीर्तन, प्रार्थना, सतकथा श्रवण करते हुये भगवान को नहीं चाहता है, प्रत्युत भगवान से संसार के सुखोपभोग के लिए, धन, मान, पद, प्रतिष्ठा, संयोग चाहता है, इस सर्वभक्षक से बचाने के लिये गुरु विवेक परमावश्यक है।

विवेकांधोहि जात्यन्धः शोच्याः सर्वत्र दुर्मतिः।

जो दुर्मति के साथ विवेकहीन है, उसे जन्मान्ध ही समझना चाहिए। (वसिष्ठ)

सात्विक श्रद्धावान की सदविवेक प्राप्त कर पाता है।

सदविवेक न होने के कारण ही अहंकार में, लोक से मान पाने की वासना है एवं सर्वशास्त्रों के ज्ञान को वासना है और देह को सुन्दर आकर्षक बनाये रखने की वासना है। यह वासना ही विविध कर्म, विकर्म के लिए प्रेरित करती रहती है।

सन्त महात्मा, चित्त में अनेक प्रकार की वासना को ही पुरुष के बन्धन का हेतु बताते हैं। समग्र रूप से वासना का क्षय हो जाने को ही मोक्ष कहते हैं।

हम देखते हैं कि वेद, शास्त्रों के विद्वान तथा अनेक प्रतिष्ठित

साध महात्मा जिनके सैकड़ो शिष्य हैं, वे भी वासना से मुक्त नहीं है, अत्यन्त प्रपंच व्यस्त हैं-ऐसा देख कर हमारे अहंकार को बहुत सन्तोष हो जाता है कि हम तो बहुत साधारण व्यक्ति हैं; हम वासना का त्याग नहीं कर पाते तो कोई चिन्ता की बात नहीं है हमारे आगे वासना वद्ध विद्वानों की बहुत बड़ी भीड़ है।

सदगुरु ने हमें समझाया कि इस प्रकार दूसरों को वासना बद्ध देखकर अपनी दुर्दशा पर सन्तोष कर लेना महामूढ़ता है; अपने प्रति घोर अपराध है। अविवेक का प्रभाव है।

श्रद्धा जागृत होने पर सन्त संग सुलभ होने पर भी यदि तुम विवेक द्वारा अपना उद्धार नहीं करते हो आत्मोपासना द्वारा वासना से मुक्त नहीं होते हो तब तुम अपने ही शत्रु हो। अन्त में तुम्हें दुःख भोगना होगा।

अविवेकी मनुष्य अपने ही बनाये हुये दोषों के कारण सुख के अन्त में दुःख भोगते हैं। अपने मन की अन्धी स्वीकृतियों के बन्धन से तब तक मुक्त नहीं हो पाते, जब तक नित्य चेतन स्वरूप आत्मा में बुद्धि को स्थिर नहीं करते।

उपासना से ही वासना का अन्त होता है। नित्य सुलभ सतचित् आनन्द स्वरूप परमात्मा से निरन्तर अभिन्न आत्मा में बुद्धि को लगाये रहना ही सत्योपासना है।

सन्त समझाते हैं कि लोभी जिस प्रकार धन का उपासक है, कामी अपनी प्रेमिका का उपासक है, अभिमानी अहंकार अपने माने हुये पद का उपासक है, उसी प्रकार साधक को सत्चित स्वरूप आत्मा परमात्मा का उपासक होना चाहिए इसके लिए दृढ़ संकल्प की तथा सद्गुरु से प्राप्त सद विवेक के आदर की ओर सुख के अन्त में निश्चित दुःख दर्शन की आवश्यकता है।

विवेक द्वारा ही भविष्य में छिपे रहने वाले दुःख का दर्शन होता है। अविवेकी दुःख का दर्शन नहीं कर पाता, वह तो दुख का भोगी बनता है।

सुखासक्त भोगी जन तन, धन, स्वजन तथा पद अधिकार के उपासक होते हैं।

परमार्थी साधक प्राणोपासना करते हैं उन्हें शक्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार मन की उपासना से सिद्धियां प्राप्त होती है।

बुद्धि के उपासक को तत्व ज्ञान होता है। तत्व ज्ञान होने पर अहं, आत्मा का उपासक होता है तभी पूर्ण रूप से भय, चिन्ता, दुःख का अन्त हो जाता है।

सुखासक्त भोगाभ्यासी व्यक्ति रजोगुण की अधिकता के कारण प्राणोपासना में मन को नहीं टिका पाता, इसीलिए आरम्भ में गुरुचरण के नख में मन लगाना अथवा गुरु के चित्र में या अपने इष्टदेव की मूर्ति में नेत्रों को ही बिना पलक गिराये देखना या फिर ज्योति जलाकर उस शिखा को देखते रहना यह त्राटक ध्यान आवश्यक होता है।

जब मन सधने लगे तब नेत्र बन्द करके सामने मन के द्वारा दोनों भौं के मध्य ध्यान जमाना बहुत सहायक होता है। ध्यान के सधने पर नाद सुनाई देता है, उसी में मन का लगाना अन्तर यात्रा की साधना है।

जब एकान्त में रहने का अभ्यास हो जाये, अधिक मेल मिलाप अथवा व्यवहारिक व्यापार आदि की चिन्ता न रहे तब किसी जानकार से पूछ कर आरम्भ में नाड़ी शुद्धि प्राणयाम, (इसी को अनुलोम विलोम कहते हैं। हठ योग के ग्रन्थों में १० प्रकार के प्राणयामों में इसका वण्रन विधिवत है) इसे नित्य दस पन्द्रह दिन करने के पश्चात भश्रिका प्राणयाम करना चाहिए।

भश्रिका में लोहार की धौकनी की भांति गहरी स्वासं लेनी और छोड़नी पड़ती है।

योगिक क्रियाओं का अभ्यास समतल भूमि में ही करना चाहिये, आसपा कोई सामान नहीं रहना चाहिये।

यह सब जानते हुए भी एक बार मैं तखत पर बैठ कर भश्रिका कर

रहा था, अचानक ऊर्जा ऊपर चढ़ी, शरीर उछला, कई बार धक्के लगने पर होश न रहा और तखत के नीचे गिर गया। आवेग शान्त होने पर होश आया।

आसन प्राणयाम किसी जानकर से ही पूछ कर करना चाहिए।

योग की सिद्धि केवल एकान्त में रहने से या गुफाओं में जंगलों में रहने से नहीं होती।

चार नियम पूर्ण रूप से सधते हैं, तब एकान्त सेवन सिद्धि प्रद होता है।

(१) वाणी का मौन

(२) मन का मौन

(३) बुद्धि का मौन

(४) अहं के आकारों की समाप्ति।

प्रायः एकान्त सेवन में वाणी तो मौन हो जाती है; लेकिन धन, सामान, भूमि, भवन आदि जो कुछ छोड़ के साधक आता है, उसी का मनन चलता रहता है, इसीलिए कोई वस्तु अपनी मानने को न रहे इसी को अपरिग्रह कहते हैं।

वस्तु छोड़ देने पर यदि कोई व्यक्ति याद आता है जिससे कुछ आशायें रहा करती है इसलिए सभी ओर से निराशा होनी चाहिए।

किसी से आशा न रहने पर यदि भीतर कोई वासना या महत्वाकांक्षा छिपी रहती है वह जाग जाती है।

इन चार बाधाओं से साधक सावधान रह कर नित्य एकान्त सेवन करता है, तब योग सिद्धि सुलभ होती है।

जिसके भीतर अनेकता का अन्त हो जाता है, केवल एक अद्वेत आत्मा परमात्मा ही रह जाता है, यही एकान्त की पूर्णता है।

सदगुरु श्रद्धावान सदशिष्य को सावधान करते हैं कि भयानक

आपत्ति आने पर जब तुम उसे हटा न सको तब अन्य प्रयत्न न करके ध्यान में बैठ जाओ परमात्मा का स्मरण करो। परमात्मा के होने से नहीं, उसके स्मरण से दुःख कटते हैं। अविनाशी चेतन स्वरूप में किसी आपत्ति की पहुंच नहीं होती है।

आत्मा न कहीं आता है, न जाता है, न बनता है, न बिगड़ता है, फिर भी अनेक रूपाकार भासता है। अज्ञान के कारण वह आभास सत्य प्रतीत होता है।

सांसारिक वस्तु, व्यक्ति के गुण दोष का श्रवण, मनन करने से रोग द्वेष बढ़ता है। अपने गुण, दोष सुनकर अभिमान या हीनता का भाव पुष्ट होता है। परमेश्वर के गुण वर्णन से रागद्वेष मिटते हैं। आत्मा परमात्मा के चिन्तन से चिन्ता मिटती है।

आत्मा परमात्मा का अज्ञान ही पाप को भूमि है।

अहंकार ही पाप भूमि में ठहर कर जब अपने को देह मानता है यहीं पाप आकार धारण करता है और देह को मेरी मानते ही पाप का आकार फैलता जाता है। अज्ञान में ही अहं के आकारों को विस्तार है।

कोई भी विद्वान यदि पैंनी बुद्धि द्वारा अज्ञान में सुख-दुःख के भोक्ता अहंकार को समझ ले तो अपने द्वारा ज्ञान को अहंकार से मुक्त कर सकता है।

संसार में जितने भी बन्धन हैं तथा दुख हैं वह सब अज्ञान के कारण है।

सदगुरु समझाते हैं कि भय तो तुम्हारे पीछे पता नहीं कब से लगा है, अब तुम अभय हो सकते हो।

मोह तो मन के साथ ही चल रहा है, अब तुम प्रेम को मोह रहित बना सकते हो।

जो चेतना-शक्ति दोषों से लिपटी है उसे तुम सदगुणों से सुसज्जित कर सकते हो।

तुम यह कह कर प्रमादी न बने रहो कि भगवान की माया नचाती है। तुम्हें सुखोपभोग की कामना नचाती है। क्योंकि तुम अज्ञान में हो।

तुम सुन चुके होंगे, पढ़ा भी होगा कि कामनायें कभी पूर्ण होती ही नहीं। समझते हुए अब ज्ञान का अनादर न करो।

तुम आत्मवान होकर, साक्षी रह कर काम क्रोधादि से मुक्त हो सकते हो।

भगवान तुम्हारे चरणों में

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों मे।
यह विनती है पल-पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
चाहे बैरी सब संसार बने, चाहे जीवन मुझपर भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
चाहे कष्टों ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अँधेरा हो।
पर चित्त न डगमग मेरा हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
चाहे काँटों में मुझे चलना हो, चाहे अग्नि में मुझको जलना हो।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
तुमहीं सब मय यह ज्ञान रहे, मुझमें न कहीं अभिमान रहे।
प्रभु मेरे तुम यह गान रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों मे।
यह विनती है पल-पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।